बहुतेरे हैं घाट

प्रवचन-क्रम

1. सत्संग: हृदय का हृदय से मौन मिलन..2
2. प्रेम: ध्यान की ज्योति..23
3. रसो वै सः की धूम...42
4. अंतिम स्वर्ण सोपान: परम मौन...63

बहुतेरे हैं घाट
पहला प्रवचन

सत्संग: हृदय का हृदय से मौन मिलन

पहला प्रश्नः आज आपके संबोधि दिवस उत्सव पर एक नयी प्रवचनमाला प्रारंभ हो रही हैः बहुतेरे हैं घाट। संत पलटू के इस सूत्र को हमें समझाने की अनुकंपा करेंः जैसे नदी एक है, बहुतेरे हैं घाट।

आनंद दिव्या, मनुष्य का मन मनुष्य के भीतर भेद का सूत्र है। जब तक मन
है तब तक भेद है। मन एक नहीं, अनेक है। मन के पार गए कि अनेक के पार गए। जैसे ही मन छूटा, विचार छूटे, वैसे ही भेद गया, द्वैत गया, दुई गई, दुविधा गई। फिर जोशेष रह जाता है वह अभिव्यक्ति योग्य भी नहीं है। क्योंकि अभिव्यक्ति भी विचार में करनी होगी। विचार में आते ही फिर खंडित हो जाएगा। मन के पार अखंड का साम्राज्य है। मन के पार "मैं" नहीं है, "तू" नहीं है। मन के पार हिंदू नहीं है, मुसलमान नहीं है, ईसाई नहीं है। मन के पार अमृत है, भगवत्ता है, सत्य है। और उसका स्वाद एक है।
फिर कैसे कोई उस अ-मनी दशा तक पहुंचता है, यह बात और। जितने मन हैं उतने मार्ग हो सकते हैं। क्योंकि जो जहां है वहीं से तो यात्रा शुरू करेगा। और इसलिए हर यात्रा अलग होगी। बुद्ध अपने ढंग से पहुंचेंगे, महावीर अपने ढंग से पहुंचेंगे, जीसस अपने ढंग से, जरथुस्त्र अपने ढंग से। लेकिन यह ढंग, यह शैली, यह रास्ता तो छूट जाएगा मंजिल के आ जाने पर। रास्ते तो वहीं तक हैं जब तक मंजिल नहीं आ गई। सीढ़ियां वहीं तक हैं जब तक मंदिर का द्वार नहीं आ गया। और जैसे ही मंजिल आती है, रास्ता भी मिट जाता है, राहगीर भी मिट जाता है। न पथ है वहां, न पथिक है वहां। जैसे नदी सागर में खो जाए।
यूं खोती नहीं, यूं सागर हो जाती है। एक तरफ से खोती है--नदी की भांति
खो जाती है। और यह अच्छा है कि नदी की भांति खो जाए। नदी सीमित है, बंधी है, किनारों में आबद्ध है। दूसरी तरफ से नदी सागर हो जाती है। यह बड़ी उपलब्धि है। खोया कुछ भी नहीं; या खोईं केवल जंजीरें, खोया केवल कारागृह, खोई सीमा और पाया असीम! दांव पर तो कुछ भी न लगाया और मिल गई सारी संपदा जीवन की, सत्य की; मिल गया सारा साम्राज्य। नदी खोकर सागर हो जाती है। मगर खोकर ही सागर होती है। और हर नदी अलग ढंग से पहुंचेगी। गंगा अपने ढंग से और सिंधु अपने ढंग से और ब्रह्मपुत्र अपने ढंग से। लेकिन सब सागर में पहुंच जाती हैं। और सागर का स्वाद एक है।
पलटू यही कह रहे हैंः जैसे नदी एक है, बहुतेरे हैं घाट।
नदी को पार करना हो तो अलग-अलग घाटों से नदी पार की जा सकती है। अलग-अलग नावों में बैठा जा सकता है। अलग-अलग मांझी हो सकते हैं। अलग होंगी पतवारें। लेकिन उस पार पहुंच कर सब अलगपन मिट जाएगा। फिर कौन पूछता है--"किस नाव से आए? कौन था मांझी? नाव का बनाने वाला कारीगर कौन था? नाव इस लकड़ी की बनी थी या उस लकड़ी की बनी थी?" उस पार पहुंचे कि इस पार का सब भूला। ये घाट, ये नदी, ये पतवार, ये मांझी, ये सब उस पार उतरते ही विस्मृत हो जाते हैं। और उस पार ही चलना है।
लेकिन लोग हैं पागल। वे नावों से बंध जाते हैं, घाटों से बंध जाते हैं। और जो घाट से बंध गया वह पार तो कैसे होगा? जिसने घाट से ही मोह बना लिया, जिसने घाट के साथ आसक्ति बना ली, जिसने घाट के साथ अपने नेह को लगा लिया, उसने खूंटा गड़ा लिया। अब यह छोड़ेगा नहीं। यह छोड़ नहीं सकता। इससे छुड़ाओगे भी तो यह नाराज होगा कि मेरा घाट मुझसे छुड़ाते हो, मेरा धर्म मुझसे छुड़ाते हो, मेरा शास्त्र मुझसे छुड़ाते हो! जिसे यह शास्त्र समझ रहा है, वही इसकी मौत बन गई। और जिसे यह घाट समझ रहा है, वह अगर पार न ले जाए तो घाट न हुआ, कब्र हो गई।
यूं ही मंदिर कब्र बन गए हैं। यूं ही मस्जिदें मजार हो गई हैं। यूं ही शास्त्र मनुष्य की छाती पर बोझ हो गए हैं। सुंदर-सुंदर प्यारे-प्यारे शब्द मनुष्य के हाथ में जंजीरें बन गए हैं, पैरों में बेड़ियां बन गए हैं।

यह मनुष्य का कारागृह बड़ी सुंदर ईंटों से बना है, बड़ी प्यारी ईंटों से बना है। इसे छोड़ने का मन नहीं होता। और इसीलिए हर आदमी कारागृह में है। फिर कारागृह अलग-अलग हो सकते हैं। फिर चर्च हो, कि गुरुद्वारा हो, कि मंदिर हो, कि शिवालय हो, क्या फर्क पड़ता है? तुम कहां बंधे हो, इससे भेद नहीं।
मैंने सुना है, एक रात कुछ लोगों ने ज्यादा शराब पी ली। पूर्णिमा की रात थी, बड़ी सुंदर रात थी। चांदी बरसती थी। और वे मस्त नशे में झूम रहे थे। मस्ती में रात का सौंदर्य और भी हजार गुना हो गया था। एक पियक्कड़ ने कहा कि चलें आज, नौका-विहार को चलें। ऐसी प्यारी रात! ऐसा चांद न कभी देखा, न कभी सुना! यह रात सोने जैसी नहीं। यह रात तो आज नाव में विहार करने जैसी है। और भी दीवानों को जंचा। वे सभी गए नदी पर। मांझी अपनी नावें बांध कर घर जा चुके थे। उन्होंने सुंदर सी नाव चुनी, उस नाव में सवार हुए, पतवारें उठाईं, खेना शुरू किया। और रात देर तक नाव को खेते रहे, खेते रहे... ।
फिर भोर होने के करीब आ गई। ठंडी हवाएं चलीं। ठंडी हवाओं ने थोड़ा सा नशा कम किया। उन पियक्कड़ों में से एक ने कहा, "न मालूम कितनी दूर निकल आए होंगे! रात भर नाव खेई है। अब लौटने का समय हो गया। कोई उतरे और जरा देख ले कि हम किस दिशा में चले आए हैं। क्योंकि हम तो नशे में थे। हमें पता नहीं हम कहां पहुंच गए हैं, किस दिशा में आ गए हैं। अब घर वापस लौटना है। इसलिए कोई उतरे किनारे पर, जरा देखे कि हम कहां हैं। अगर समझ में न आ सके तो पूछे किसी से कि हम उत्तर चले आए, कि पूरब चले आए, कि पश्चिम चले आए, कि हम अंततः कहां आ गए हैं।
एक आदमी उतरा और उतर कर खिलखिला कर हंसने लगा। यूं खिलखिलाने लगा कि बाकी लोग समझे कि पागल हो गए हो! उसकी खिलखिलाहट ने उनका नशा और भी उतार दिया। पूछें उससे कि बात क्या है हंसने की? वह कुछ कहे न। उसे हंसी ऐसी आ रही है कि अपने पेट को पकड़े। दूसरा उतरा; वह भी हंसने लगा। तीसरा उतरा; वह भी हंसने लगा। वे सभी उतर आए और उस घाट पर भीड़ लग गई। क्योंकि वे सभी हंस रहे थे। भीड़ ने पूछा कि बात क्या है? बामुश्किल एक ने कहा, "बात यह है कि रात हम नौका-विहार को निकले थे। बड़ी प्यारी रात थी। रात भर हमने पतवार चलाई। हम थक गए, हम पसीना-पसीना हो गए। और अब उतर कर हमने देखा कि हम नाव को किनारे से खोलना भूल ही गए थे। यह रात भर की यात्रा बिल्कुल व्यर्थ गई; हम जहां हैं, यहीं थे, रात भर यहीं रहे। पतवारें जोर से चलाते थे तो नाव हिलती थी। हम सोचते थे यात्रा हो रही है।"
ऐसे ही लोग बंधे हैं, होश में नहीं हैं, मूर्च्छा में हैं। और मूर्च्छा में तुम जिसको भी पकड़ लोगे वही तुम्हारे लिए खूंटा हो जाएगा। उसके आस-पास ही तुम चक्कर काटते रहोगे।
लोग मंदिरों में परिक्रमा कर रहे हैं--खूंटों के चक्कर काट रहे हैं। लोग काबा जा रहे हैं, काशी जा रहे हैं, गंगा जा रहे हैं, कैलाश जा रहे हैं, गिरनार जा रहे हैं--खूंटों की पूजा चल रही है। किसी को इस बात की फिकर नहीं कि सदियां बीत गईं, नाव चलाते-चलाते थक गए, मगर पहुंचे कहां? पहुंचने की सुध-बुध ही नहीं है।
घाट खतरनाक हो सकते हैं। मूर्च्छित के हाथ में कोई भी चीज खतरनाक हो जाती है। और फिर हर घाट वाला यह दावा करता है कि मेरा घाट पुराना है, कि मेरा घाट सोने से मढ़ा है, कि मेरा ही घाट सच है, और सब घाट झूठ हैं, जो मेरे घाट से उतरेगा वही पहुंचेगा।
बड़ा विवाद मचा हुआ है। सदियों से लोग शास्त्रार्थ कर रहे हैं--क्या सत्य है? अंधे विचार कर रहे हैं कि हाथी कैसा है? कोई कह रहा है--जिसने सूंड छुई है--कि यूं है। कोई कह रहा है--जिसने हाथी के कान छुए हैं--कि सूप जैसा है। कोई कह रहा है--जिसने हाथी के पैर छुए हैं--कि मंदिर के खंभों जैसा है। भारी विवाद है अंधों में। भारी शास्त्रार्थ है। एक-दूसरे को गलत सिद्ध करने में लगे हैं। लेकिन किसी को होश नहीं कि आंख ही न हो अपने पास, दृष्टि ही न हो, तो दर्शन क्या होगा?
ये दर्शन-शास्त्र, जिनमें लोग उलझे हैं, अंधों की ईजादें हैं। आंख वाले चुप हो जाते हैं। चुप हो जाते हैं सत्य के संबंध में, परमात्मा के संबंध में। जरूर बोलते हैं तो बोलते हैं उन विधियों के संबंध में, जिनसे

परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है। उनका बोलना इशारा है; चांद-तारों की तरफ उठाई हुई अंगुलियां हैं। लेकिन अंगुलियां चांद-तारे नहीं हैं। और अंगुलियों को ही जो पकड़ ले वह नासमझ है।
पलटू ठीक कहते हैंः जैसे नदी एक है, बहुतेरे हैं घाट।
यह अस्तित्व तो एक है। इसमें कोई मूसा की तरह, और कोई ईसा की तरह, और कोई कबीर की तरह, और कोई नानक की तरह--अलग-अलग रास्तों से, अलग-अलग ढंग और विधियों से सत्य तक पहुंच गया है। लेकिन विधियों को पकड़ने से कोई नहीं पहुंचता; विधियों पर चलने से पहुंचता है। नावों कोढोने से कोई नहीं पहुंचता; नाव में सवारी करनी होती है, यात्रा करनी होती है।
किनारों पर बैठ कर विवाद करने से कोई भी सार नहीं है। किनारे छोड़ो! छोड़ो नाव को, पतवारें उठाओ! वह जो दूर किनारा है, वह जो अभी दिखाई भी नहीं पड़ता है, अभी जिसको देखने की आंख भी नहीं है, जिसे पहचानने की क्षमता भी नहीं है--वह जो दूर किनारा है, वही मंजिल है। वह जो अभी अदृश्य है, वही मंजिल है। और मजा यह है कि वह कितने ही दूर हो, साथ ही वह तुम्हारे भीतर भी है।
यूं समझो कि तुम अपने से बाहर हो, इसलिए जो पास से पास है वह दूर हो गया है। तुम बाहर ही बाहर भटक रहे हो। और तुम अपने से दूर ही दूर निकलते जा रहे हो। आदमी भी कैसा पागल है! गौरीशंकर पर चढ़ेगा; पाने को वहां कुछ भी नहीं। जब एडमंड हिलेरी से पूछा गया कि क्यों, किसलिए तुमने यह भयंकर यात्रा की? यह खतरनाक यात्रा करने का मूल कारण क्या है? क्योंकि एडमंड हिलेरी के गौरीशंकर पर पहुंचने के पहले न मालूम कितने यात्री-दल चढ़े, खो गए; न मालूम कितने यात्री गिरे और उनकी लाशों का भी पता न चला। यह क्रम कोई सत्तर साल से चल रहा था। गौरीशंकर की यात्रा में अनेकों जानें गईं। और पाने को वहां कुछ भी नहीं था, यह तय है। जब एडमंड हिलेरी से पूछा गया तो उसने कंधे बिचकाए। उसने कहा, "यह भी कोई सवाल है! गौरीशंकर है, यही काफी चुनौती है। अब तक अनचढ़ा है, यही काफी चुनौती है। अब तक दुर्गम रहा है, यही काफी चुनौती है। आदमी को चढ़ना ही होगा।" पाने का जैसे कोई सवाल नहीं!
अहंकार अजीब तरह की चुनौतियां स्वीकार कर लेता हैः गौरीशंकर पर चढ़ना है, चांद पर जाना है। अब मंगल-ग्रह पर जाने की बात चल रही है। और यह बात कुछ रुकेगी नहीं। यह बात आगे बढ़ेगी। अभी ग्रहों पर, फिर तारों पर पहुंचना होगा। और फिर अनंत विस्तार है तारों का। यूं आदमी अपने से दूर निकलता जाता है।
किनारा दूसरा कहीं बाहर नहीं है। ये बहुतेरे जो घाट हैं, ये इसलिए बहुत हैं कि तुम अलग-अलग बाहर की यात्राओं पर निकल गए हो। तुम अपने से ही बहुत दूर चले गए हो। तुम्हें अपनी ही खबर नहीं रही--कहां छोड़ आए, किस जंगल में अपने को भूल आए हो, कहां तुम खो गए हो--इसका तुम्हें होश नहीं। तुम्हारी नजरें किसी और चीज पर लगी हैं। किसी की धन पर, किसी की पद पर, किसी की परमात्मा पर, किसी की स्वर्ग पर, किसी की मोक्ष पर। लेकिन नजर बाहर अटकी है; वहां पहुंचना है। और मामला कुछ और हैः वहां तुम हो; यहां पहुंचना है। दूर तुम जा चुके हो, पास आना है। क्रमशः, आहिस्ता-आहिस्ता, उस बिंदु पर लौट आना है जो हमारा केंद्र है। उस पर आते ही सारे राज खुल जाते हैं; सारे रहस्य जो आच्छादित हैं, अनाच्छादित हो जाते हैं; जोढके हैं, उघड़ जाते हैं। उपनिषद के ऋषि ने प्रार्थना की हैः "हे परमात्मा! सोने से ढके हुए इस पात्र को तू उघाड़ दे!" प्रार्थना प्यारी है। "सोने से ढके हुए इस पात्र को तू उघाड़ दे!"
यह सोने से ढका है। चूंकि सोने से ढका है, इसलिए हम ढक्कन को ही पकड़ लेते हैं। ऐसे प्यारे ढक्कन को कौन छोड़े! जोर से पकड़ लेते हैं कि कोई और न पकड़ ले। मगर रहस्य इसी सोने में ढका है। और जब तक कोई इस सोने को न छोड़े... । यह "सोना" शब्द भी बड़ा प्यारा है। एक अर्थ तो "स्वर्ण" और एक अर्थ "नींद"। ये नींद से भरे हुए लोग ही स्वर्ण को पकड़े बैठे हैं। यही ढकना है--यह नींद, यह बेहोशी, यह मूर्च्छा। जाग जाओ!
अब जागोगे कैसे? बहुतेरे घाट हो सकते हैं। महावीर एक तरह से जागे, बुद्ध दूसरी तरह से जागे। और स्वभावतः, जब कोई व्यक्ति जागता है, तो जिस

विधि से जागता है उसी की बात करता है। और किसी की बात करे भी तो कैसे करे? जो मार्ग परिचित है उसकी ही बात करेगा। जिस रास्ते से चल कर वह आया है, उसी रास्ते से उसकी पहचान है। जिस नाव पर बैठ कर उसने यात्रा की है, उसी नाव से तुम्हें परिचित करा सकता है। लेकिन इससे तुम यह मत समझ लेना कि बस एक ही नाव है। वही समझ लिया गया है।
ईसाई सोचते हैंः जो जीसस की नाव में नहीं बैठेगा वह नहीं पहुंचेगा।
मगर उनको यह भी ख्याल नहीं आता कि जीसस खुद कैसे पहुंचे? तब तक तो जीसस
की नाव नहीं थी। यह तो सीधी-साफ बात है। जीसस तो ईसाई नहीं थे। उन्होंने "ईसाई" शब्द भी नहीं सुना था। कभी सपने में भी यह शब्द और इसकी अनुगूंज उन्हें न आई होगी। जब जीसस पहुंच सके बिना ईसाई हुए तो दूसरे क्यों न पहुंच सकेंगे?
बौद्ध सोचते हैंः बस उनका ही रास्ता एकमात्र रास्ता है।
लेकिन बुद्ध को तो इस रास्ते का कोई भी पता न था। बुद्ध तो टटोलते- टटोलते, खोजते-खोजते, अंधेरे में किसी तरह इस द्वार को पाए थे। इस द्वार का नाम बौद्ध द्वार है, इसकी उन्हें कभी कल्पना भी नहीं थी। वे खुद भी बिना बौद्ध हुए पहुंचे थे। और यही सत्य सबके संबंध में है। जो भी पहुंचा है, किसी और के रास्ते पर चल कर नहीं पहुंचा है। उसे अपने ही घाट से पहुंचना है। प्रत्येक को अपने ही घाट से पहुंचना है। प्रत्येक को अपनी ही नाव बनानी है। स्वयं की चेतना की ही नाव गढ़नी है। चलना है और चल कर ही अपना रास्ता बनाना है। बने-बनाए रास्ते नहीं हैं। काश, बने-बनाए रास्ते होते! सीमेंट और कोलतार के बने हुए राजपथ होते! तो सत्य तक पहुंचाने वाली बसें चलतीं, रेलगाड़ियां होतीं, पटरियों पर लोग दौड़ते। फिर कोई अड़चन न होती। अड़चन यही है कि कोई बना हुआ रास्ता नहीं है।
बुद्ध के वचन स्मरणीय हैं। बुद्ध ने कहा हैः जैसे पक्षी आकाश में उड़ते हैं तो उनके कोई पग-चिह्न नहीं छूट जाते। पक्षी उड़ता जरूर है, लेकिन कोई रास्ता नहीं बनता, आकाश खाली का खाली रहता है, कि कोई दूसरा पक्षी ठीक उसी पक्षी के पग-चिह्नों पर चल कर आकाश में नहीं उड़ सकता। पग-चिह्न ही नहीं बनते। यूं ही सत्य का आकाश भी है। वहां कोई चरण-चिह्न नहीं बनते।
लेकिन लोग चरण-चिह्नों को पूज रहे हैं। लोगों ने गढ़ लिए हैं चरण-चिह्न। समय की रेत पर जरूर चरण-चिह्न बनते हैं; लेकिन सत्य तो समयातीत है, कालातीत है, वहां कोई चरण-चिह्न नहीं बनते। वहां तो प्रत्येक को चलना पड़ता है और क्रमशः अपने भीतर की जागृति से ही अपने रास्ते को निर्मित करना होता है।
अनुकरण नहीं--स्वयं होना जरूरी है। निजता की उदघोषणा जरूरी है।
अब तक यही सिखाया गया है सदियों से कि पकड़ लो कोई घाट, कि पकड़ लो कोई नाव, कि पकड़ लो कोई शास्त्र, कि बंधा हुआ कोई सिद्धांत, कि रटे-रटाए सदियों के सड़े-गले उत्तर दोहराए जाओ।
जिंदगी सदा नये सवाल उठाती है और तुम्हारे जवाब हमेशा पुराने होते हैं। इसलिए जिंदगी और तुम्हारा तालमेल नहीं हो पाता, संगीत नहीं बन पाता। जिंदगी कुछ पूछती है, तुम कुछ जवाब देते हो। जिंदगी पूरब की पूछती है, तुम पश्चिम का जवाब देते हो। जिंदगी कभी वही दुबारा नहीं पूछती। और तुम्हारे जवाब वही हैं जो तुम्हारे बाप-दादों ने दिए थे, उनके बाप-दादों ने दिए थे। मजा यह है कि जितना पुराना जवाब हो, लोग समझते हैं उतना ही ज्यादा ठीक होगा। जितना पुराना हो उतना ही ज्यादा गलत होगा! जवाब नया चाहिए, नितनूतन चाहिए! जवाब तुम्हारी स्व-स्फुरणा से पैदा होना चाहिए। जवाब तुम्हारे बोध से आना चाहिए।
लेकिन सदियों से तुम्हें बुद्धूपन सिखाया जा रहा है, मूढ़ता पिलाई जा रही है, अंधविश्वास तुम्हारी खोपड़ी में भरे जा रहे हैं। और तब यह दुर्गति मनुष्यता की हो गई है। इस दुर्गति में तुम्हारे तथाकथित महात्माओं का हाथ है। इस दुर्गति में तुम्हारे धर्मगुरुओं का हाथ है। इस दुर्गति में उन सारे लोगों का हाथ है, जिनकी चाहे नीयत अच्छी हो, इरादे नेक हों, मगर जिनकी समझ कुछ भी नहीं। अंधे आदमी की नीयत कितनी ही अच्छी हो, और वह तुम्हारा हाथ पकड़ कर रास्ता दिखाने लगे, तो नानक ने कहा हैः "अंधा अंधा ठेलिया, दोनों

कूप पड़ंत।" नीयत बड़ी अच्छी थी। मार्ग-द्रष्टा बन रहा था। इरादे बुरे न थे। इरादों पर कोई शक नहीं है मुझे। लेकिन आंख ही न हो बेचारे के पास तो इरादे क्या करेंगे?
आंख वालों ने सदा यही कहा हैः अप्प दीपो भव! अपने दीये खुद बनो। आंख वालों ने तुम्हें स्वतंत्रता दी है, निजता दी है। आंख वालों ने कहा हैः तुम्हारे भीतर ज्योति छिपी है, जरा तलाशो, जरा निखारो! आंख वालों ने कहा हैः क्या तुम बाहर की शराबें पी रहे हो? तुम्हारे भीतर शराबों की शराब है, जिसे एक बार पी लिया तो आदमी को ऐसी मदमस्ती आ जाती है जो कभी नहीं उतरती; और ऐसी मदमस्ती कि जो बेहोशी भी नहीं होती; जो बेहोशी भी होती है और साथ ही साथ होश भी होती है। मस्ती से भरा हुआ होश--या होश से भरी हुई मस्ती।
मय भी है, मीना भी है, महफिल भी है और शाम भी
पर इंतजार में तेरे खाली रहा ये जाम भी।
है वस्ल का वादा तेरा, आ जा सहर करीब है
जागी हुई हैं मस्तियां सोई हुई है शाम भी।
कासिद भी न आया इधर, न बात ही पहुंची उधर
दोनों ही कशमकश में हैं हसरत भी और पयाम भी।
न दम मेरा निकल सका, न तू ही हमनवा बना यादों में
तेरी जल गए शायर भी और कलाम भी।
बेजार क्यूं "खलिश" है तू माहौल रूठा देख कर
माना खिजां में घिर गए साकी भी और जाम भी।
मय भी है, मीना भी है, महफिल भी है और शाम भी
पर इंतजार में तेरे खाली रहा ये जाम भी।
किसका इंतजार कर रहे हो? कोई आने वाला नहीं। किसका इंतजार कर रहे हो? जिसे आना था वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। किसकी प्रतीक्षा में बैठे हो? जो आना था आ ही गया है--तुम्हारे साथ ही आया है। जिसे तुम खोज रहे हो वह खोजने वाले में छिपा है। इसे उससे कहीं और खोजा नहीं जा सकता। जो अपने में डूबेगा, जो अपने में उतरेगा, जो अपने में ठहरेगा, वही उसे पाने में समर्थ होता है।
हां, जो पा लेता है, बता भी नहीं सकता कि क्या पाया। गूंगे का गुड़ हो जाता है। कहना भी चाहे तो कह नहीं सकता। कहना चाहा है। जिसने पाया है उसने कहना चाहा है। मगर बात अनकही ही रह गई। कोई शास्त्र नहीं कह पाया। कोई शास्त्र कभी कह भी नहीं पाएगा। यह असंभव है। क्योंकि जो निशब्द में अनुभव होता है, शब्द उसे कैसे प्रकट करेंगे? जो मौन में पाया जाता है उसे भाषा में कैसे अनुवाद किया जा सकता है? इसीलिए सत्संग का मूल्य है। सत्संग का अर्थ इतना ही है कि जिसे मिला हो, जो पहुंच गया हो, उसके पास बैठने की कला; उसके पास चुपचाप मौजूद होने का ढंग, शैली; उसकी आंखों में झांकने की कला। उसके पास, उसकी उपस्थिति में कुछ घट सकता है। घटेगा तो तुम्हारे भीतर। लेकिन उसकी उपस्थिति, जो तुम्हारे भीतर सोया है उसे जगाने के लिए बहाना बन सकती है।
तुमने देखा होगा बहुत बार कि अगर दो-चार आदमी उदास बैठे हों और तुम हंसते, गीत गुनगुनाते भी उनके पास जाओ तो उदास हो जाओगे। उन चार उदास आदमियों की उदासी तुम्हारी हंसी को सोख लेगी। जैसे स्याही सोखता न स्याहीसोख, ऐसे उनकी उदासी तुम्हारी हंसी को सोख लेगी। तुम अचानक पाओगे तुम्हारे गीत उड़ गए। तुम अचानक पाओगे तुम्हारा आनंद कहीं तिरोहित हो गया। तुम अचानक पाओगे घटा छा गई। सूरज अभी-अभी निकला था और अब अंधेरा हो गया। क्या हुआ? उन चार लोगों की मौजूदगी ने तुम्हारे भीतर कुछ किया। उनकी उदासी ने तुम्हारे भीतर की सोई हुई उदासी कोझकझोर दिया।
जो घटना उदासी में घटती है, वैसी ही घटना हंसी-खुशी में भी घटती है।
तुम उदास हो और चार मित्र आ जाएं, हंसी-खुशी की बात चल पड़े, मौज-बहार की बात होने लगे--तुम भूल जाते हो अपनी उदासी। तुम भी हंस पड़ते हो। तुम भी गीत में सम्मिलित हो जाते हो। अगर वे चारों नाचने लगें तो तुम्हारे पैरों में भी थिरक आ जाती है, पुलक आ जाती है।

तुमने देखा, कोई नर्तक नाचता हो, तो तुम्हें चाहे नाच न भी आता हो तो
भी तुम्हारे पैरों में कोई चीज गतिमान हो उठती है। तुम्हें चाहे संगीत, तुम्हें चाहे लय और ताल का कोई बोध न हो, फिर भी तुम्हारे हाथ, कुर्सी पर ही सही, थाप देने लगते हैं।
यूं ही सत्संग में घटित होता है। जिसने पाया है, तुम उसे तो प्रभावित नहीं कर सकते। करा.ेडों लोग भी उसके पास उदास बैठे रहें, तो भी जिसने पाया है, जिसने जीवन के अनुभव को जीया है, जिसने चखा है, जो उतर गया घाटों के पार और पहुंच गया वहां जहां पहुंचना है, तो करोड़ों उदास लोग भी उसके आनंद को खंडित नहीं कर सकते। उसकी मस्ती उससे छीनी नहीं जा सकती। लेकिन एक व्यक्ति भी करोड़ों लोगों के भीतर आनंद के स्वर छेड़ सकता है।
यह बात कही तो नहीं जा सकती, मगर फिर भी निशब्द में संवादित हो जाती है। मौन में ही झरती है।
मुमकिन नहीं कि बज्मे-तरब फिर सजा सकूं।
अब ये भी है बहुत कि तुम्हें याद आ सकूं।।
ये क्या तिलिस्म है कि तेरी जल्वागाह से।
नजदीक आ सकूं न कहीं दूर जा सकूं।।
जौके-निगाह और बहारों के दर्मियां।
पर्दे गिरे हैं वो कि न जिनको उठा सकूं।।
किस तरह कर सकोगे बहारों को मुतमइन।
अहले-चमन, जो मैं भी चमन में न आ सकूं।।
तेरी हसीं फिजा में, मेरे ऐ नये वतन। ऐसा भी है कोई, जिसे अपना बना
सकूं।।
"आजाद" साजे-दिल पे हैं रक्सां के जमजमे।
खुद सुन सकूं मगर न किसी को सुना सकूं।।
ऐसा भी गीत है जो खुद तो सुना जाता है--खुद सुन सकूं मगर न किसी को सुना सकूं--नहीं सुनाया जा सकता, मगर फिर भी मौन में संवादित होता है। एक ऐसा भी संगीत है जो वीणा पर नहीं बजाया जाता; जिसके लिए किसी साज की कोई जरूरत नहीं है। एक ऐसा भी संगीत है जो आत्मा में बजता है, और जो भी मौन है, जो भी तैयार है उसे अंगीकार करने को, जो भी उसके स्वागत के लिए उत्सुक है, जो भी उसे पी जाने को राजी है, उसके भीतर भी बज उठता है। बात हृदय से हृदय तक हो जाती है; कही नहीं जाती, सुनी नहीं जाती।
पलटू का सूत्र प्यारा हैः बहुतेरे हैं घाट। इसलिए लड़ना मत, झगड़ना मत, विवाद में न पड़ना, तर्क के ऊहापोह में न उलझना। मत फिकर करना कि क्या ठीक है और क्या गलत। तुम्हारी प्रीति को जो रुच जाए, तुम्हारे प्रेम को जो भा जाए, उस पर चल पड़ना। विवाद अटका लेता है, उलझा लेता है--इसी घाट पर। और विवाद तुम्हारे मन को इतने विरोधाभासी विचारों से भर देता है कि चलना मुश्किल हो जाता है। क्या ठीक है?
लोग मुझसे पूछते हैं कि हम कैसे चल पड़ें जब तक तय न हो जाए कि क्या ठीक है?
यह तय कैसे होगा कि क्या ठीक है? इसको तय करने का कोई उपाय नहीं। यह तो अनुभव से ही निर्णीत होगा। यह तो अंत में तय होगा, प्रथम तय नहीं हो सकता। मगर उनकी बात भी सोचने जैसी तो है। सभी का सवाल वही है--कैसे चल पड़ें
जब तक तय न हो? और जब तक चल न पड़ोगे, कभी तय न होगा। तो स्वभावतः जिन्होंने सोच रखा है तय हो जाएगा, तर्क से सिद्ध हो जाएगा तभी चलेंगे, वे कभी नहीं चलेंगे। वे यहीं अटके रहेंगे। वे विवाद में ही पड़े रहेंगे। विवाद और विवाद पैदा करता है। विवाद धुआं पैदा करता है। आंखें और मुश्किल से देखने में... वैसे ही देखने में असमर्थ थीं, और भी असमर्थ हो जाती हैं।
सत्य विवाद की बात नहीं, अनुभव की बात है। इसलिए किसी भी घाट से उतर जाओ और किसी भी नाव से उतर जाओ, निर्णय अंत में होगा। और यह बेहतर है कि चाहे भटकना पड़े तो भटक जाओ, मगर घाट पर मत रुके रहो। क्योंकि भटकने वाला भी सीखेगा। अगर आज नाव गलत गई, अगर आज गलत यात्रा में गया, आज गलत दिशा में गया, तो कल ठीक दिशा में जा सकता है। आदमी भूलों से सीखता है। लेकिन जो भूल करने से भी डरते हैं उनके जीवन में तो सीख कभी पैदा नहीं होती। जो इतने

होशियार हैं कि जब सब तरह से तय हो जाएगा, सौ प्रतिशत निर्णय हो जाएगा तभी चलेंगे, वे कभी नहीं चल पाएंगे।
चलने के लिए साहस चाहिए। और चलने के लिए तर्क साहस नहीं देता। तर्क बहुत कायर है। तर्क बहुत नपुंसक है। चलने के लिए प्रेम चाहिए। चलने के लिए प्रीति के सिवा और कोई उपाय नहीं। कुछ लोग बुद्ध के प्रेम में पड़ गए, इसलिए चल पड़े; इसलिए नहीं कि बुद्ध के तर्क से सिद्ध हुआ कि वे जो कहते हैं वह सही है। कुछ लोग लाओत्सु के प्रेम में पड़ गए और चल पड़े। चल पड़े तो पहुंचे। हृदय की सुनो। और हृदय की भाषा और है; वह तर्क की भाषा नहीं है, वह प्रेम की भाषा है। बुद्धि को जरा बाद दो, एक तरफ हटा कर रखो। बुद्धि सिर्फ विवाद पैदा करती है, इसलिए उसे बाद दो। बुद्धि को थोड़ा हटाओ और थोड़े प्रेम को जगने दो। प्रेम में दो पत्ते भी ऊग आएं तो तुम्हारे जीवन में क्रांति सुनिश्चित है। प्रेम के दो पत्ते काफी हैं विचार के बहुत ऊहापोह के मुकाबले। विचार के पहाड़ भी किसी काम नहीं आते। सिर्फ उनके नीचे लोग दब जाते हैं और मर जाते हैं।
पलटू यह कह रहे हैं कि मान लो बहुतेरे हैं घाट। मत विवाद करो। जो जिस घाट से जाना चाहे, जाने दो। तुम्हें जो प्रीतिकर लगे उस पर चल पड़ो। यह नदी एक है। हमेशा यात्रा का ध्यान करो--चलना है। चलने वाले पहुंचते हैं। और अगर भटकते हैं तो भी पहुंच जाते हैं, क्योंकि हर भटकन सिखावन बनती है।
इस सूत्र को याद रखोः इसके पहले कि कोई सही द्वार पर दस्तक दे, हजारों गलत द्वारों पर दस्तक देनी पड़ती है। क्योंकि हजार द्वारों में एक ही द्वार सच्चा द्वार है। मगर दस्तक ही न दोगे तो नौ सौ निन्यानबे जो गलत हैं उनको छोड़ने का क्या उपाय तुम्हारे पास है? क्या मार्ग तुम्हारे पास है? दस्तक दो! दस्तक तय कर देगी--"यह द्वार नहीं है, दीवाल है। आगे बढ़ो।" यूं ही भूल कर-कर के, चूक कर-कर के आदमी का निशाना अचूक हो जाता है। भूल करते-करते आदमी सीख जाता है। और इसके सिवा कभी कोई दूसरा मार्ग नहीं रहा है।
मेरे संन्यासियों से लोग पूछते हैं कि क्या बात है, क्यूं संन्यासी
हो गए हो?
और मेरे संन्यासी को अड़चन स्वाभाविक है--पुरानी अड़चन है, सदा की अड़चन है--वह जवाब नहीं दे पाता, या जो भी जवाब देता है उसको खुद लगता है कि वह जवाब नहीं है। चाहे किसी तरह समझा-बुझा दे, मगर खुद उसके प्राणों में यह बात साफ होती है कि जो मैंने जवाब दिया उसमें कुछ कमी है।
जवाब दिया ही नहीं जा सकता। यह मामला प्रेम का है, यह प्रीति का है। यह मामला पागलपन का है, परवानों का है। अब परवाना क्या जवाब दे कि शमा पर क्यों जल जाता है? और कौन समझेगा उसके जवाब को? सिर्फ थोड़े से दूसरे जो परवाने हैं वे समझ पाएंगे। मगर उनको समझाने की कोई जरूरत नहीं। कोई और तो समझेगा नहीं। और तो उसे पागल ही कहेंगे।
जिसे सत्य को खोजना है उसे भीड़ के द्वारा अपमानित होने के लिए तैयार रहना चाहिए। भीड़ उसकी निंदा करेगी, भीड़ विरोध करेगी, भीड़ इनकार करेगी, भीड़ उपेक्षा करेगी। भीड़ उसे पागल कहेगी। भीड़ सब तरह से उसके मार्ग में रुकावटें डालेगी। लेकिन दीवाने को कोई कभी रोक नहीं पाया है। सच तो यह है, जितना उसे रोकने की कोशिश की जाती है, उसके भीतर उतना ही बल आ जाता है। वह हर राह के पत्थर को सीढ़ी बना लेता है। दीवाने विवाद नहीं करते। दीवाने तो निर्विवाद जीते हैं। और जो निर्विवाद जीते हैं उनकी मंजिल दूर नहीं। उनकी मंजिल आ ही गई!
एक ही कदम में यात्रा पूरी हो सकती है; बस साहस की बात है। एक क्षण में निर्वाण का अमृत तुम पर बरस सकता है; बस प्रेम से भरी छाती चाहिए। इसलिए जिसको जो घाट प्यारा हो, कहनाः जाओ, चलो, नाव में बैठो, यात्रा करो। और मुझे जो प्रीतिकर है उस पर चलने दो।
पलटू विवाद को काटने के लिए यह कह रहे हैं। पलटू पांडित्य को काटने के लिए यह वचन कह रहे हैंः जैसे नदी एक है, बहुतेरे हैं घाट। यह सूत्र प्यारा है और सभी साधकों को स्मरण रखने योग्य है।

दूसरा प्रश्न:

दीवारों से बातें करना अच्छा लगता है हम भी पागल हो जाएंगे ऐसा लगता है आंखों को भी ले डूबा इस दिल का पागलपन आते-जाते जो मिलता है तुम सा लगता है
हम भी पागल हो जाएंगे ऐसा लगता है
किसको पत्थर मारूं ऐ दिल कौन पराया है
शीशमहल में एक-एक चेहरा अपना लगता है
हम भी पागल हो जाएंगे ऐसा लगता है
दीवारों से बातें करना अच्छा लगता है

वीणा भारती, दीवालों से बातें करना आ जाए तो ध्यान आ गया। दीवालों से ज्यादा देर बातें चल नहीं सकतीं। क्योंकि दीवालें तो कुछ भी न कहेंगी। दीवालें तो कोई उत्तर न देंगी। दीवालें तो कोई प्रश्न न उठाएंगी। न आएगा उत्तर, न आएगा प्रश्न, कोई कब तक दीवालों से बातें कर सकता है!
बोधिधर्म के संबंध में यह प्रसिद्ध है कि वह नौ साल तक दीवाल के सामने बैठा देखता रहा। और दीवाल को देखते-देखते ही परम संबोधि को उपलब्ध हुआ। बहुतेरे हैं घाट! अब यह तुमने कभी सोचा भी नहीं होगा कि दीवाल को देखते- देखते भी कोई परम संबोधि को उपलब्ध हो सकता है। मगर यह बात तो साफ मालूम पड़ती है कि नौ साल तक अगर कोई दीवाल को ही देखेगा तो बात कब तक चलाओगे! अकेले ही अकेले कब तक खींचोगे! एकालाप रहेगा, वार्तालाप तो हो नहीं सकता। दीवाल तो पहले से ही संबोधि को उपलब्ध है। दीवाल तो कहेगीः "तुम्हारी मर्जी, बकना है बको। हम तो पहुंच चुके!" कब तक तुम एकालाप करोगे? दीवाल तो हां-हूं भी न करेगी। कम से कम हां-हूं भी करे, तो भी चर्चा जारी रहे। दीवाल तो बस चुप ही रहेगी। और कोरी दीवाल!
जरूर शुरू-शुरू में तुम अपने सपने उस दीवाल पर आरोपित करोगे। दीवाल
का परदा बना लोगे। अपने चित्त की फिल्म को दीवाल पर फैलाओगे। अपने कचरे को दीवाल पर फेंकोगे। मगर कब तक? आखिर वही फिल्म बार-बार देखते-देखते थक भी जाओगे, ऊब भी जाओगे। और जल्दी ही यह समझ में आ जाएगा कि दीवाल तो चुप है, मैं खुद ही बकवास किए जा रहा हूं। और सार क्या? दीवाल सिर भी तो नहीं हिलाती। न कोई प्रशस्ति, न कोई प्रशंसा। यह भी तो नहीं कहती कि क्या प्यारी बात कही! न ताली बजाती। किसी तरह का सहारा नहीं देगी दीवाल।
नौ साल तक बोधिधर्म दीवाल को देखता रहा, वीणा! और देखते-देखते दीवाल जैसा ही कोरा हो गया। जैसी दीवाल चुप थी, ऐसा ही चुप हो गया। सत्संग हो गया। दीवाल से मिल गया वह, जो बड़े से बड़े पंडित से न मिलता। दीवाल से पा लिया उसे जोशास्त्रों में नहीं है।
सिर्फ सूफियों के पास एक किताब है, जिसमें कुछ भी नहीं लिखा है; वह कोरी है। कोई एक हजार साल पुरानी किताब है। और जब पहली दफा वह किताब पाई गई, तो कथा है कि जिस सूफी फकीर के पास वह किताब पाई गई वह जीवन भर उसे छिपाए रहा। वह किसी को भी, अपने प्यारे से प्यारे शिष्य को भी, उस किताब को देखने नहीं देता था। उसने उस किताब को ठीक से पोटली में बांध कर, अपने साथ ही रखता था। नहाने भी जाता था तो किताब अपने साथ ही ले जाता था। रात सोता था तोतकिए के नीचे रख कर सोता था। क्योंकि सब शिष्यों की नजर उस किताब पर थी--उस किताब में राज क्या है! बड़ी आकांक्षा थी कि एक दफा देख लें। सब द्वार-दरवाजे बंद करके उस किताब को पढ़ता था। शिष्यों कोशक-शुबहा होता था, झांकते भी थे। आखिर शिष्य ही थे! कुतूहल, जिज्ञासा... । छप्पर पर चढ़ जाते, संधों में से देखते कि पढ़ रहा है। है कोई राज की बात! कभी किसी के सामने न खोलता।
जब मरा यह फकीर तो उसकी अंत्येष्टि करने की फिकर तो शिष्यों ने बाद में की, सबसे पहले तकिए के नीचे से किताब निकाली। जैसे इसी की प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब तुम विदा होओ और हम देखें! और जो पाया तो भौचक्क रह गए। किताब खाली थी। किताब में सिर्फ कोरे कागज थे, कुछ लिखा ही न था। तब से एक हजार साल बीत गए। गुरुओं से शिष्यों को वह किताब दी जाती रही है। कुछ भी

नहीं लिखा है। एक शब्द नहीं लिखा है। शुरू से लेकर अंत तक बिल्कुल खाली है; दीवाल ही है।
बोधिधर्म ज्यादा होशियार था। क्या ढोना! दीवाल हर जगह मौजूद है; कहीं
भी बैठ रहे, बस दीवाल पर नजर रखी। तुमने मंदिरों को भी कचरा कर लिया है; उसने दीवालों को मंदिर बना लिया था।
वीणा, मत फिकर इसकी कर कि दीवालों से बातें करना अच्छा लगता है। और किससे बातें करेगी? आदमियों से बातें करना मतलब करीब-करीब विक्षिप्त लोगों से बातें करना है; जिन्हें कुछ पता नहीं, उनसे बातें करना है। यूं तो लोग बातों के घर हैं। ईश्वर के संबंध में कहो तो वे बताने को राजी हैं। मोक्ष के संबंध में कहो तो बताने को राजी हैं। जिनकी उन्हें कोई सपने में भी खबर नहीं है, उस संबंध में भी बताने का राजी हैं। पूछो भर। पूछने की भी जरूरत नहीं। जो असली बक्काड़ हैं, न भी पूछो तो गर्दन पकड़ लेंगे।
एक छोटा बच्चा अपने मित्र को कह रहा था कि मेरी मां गजब की है! बस जरा
सा निमित्त भर मिल जाए, फिर घंटों तक रुकती ही नहीं। फिर बात में से बात, बात में से बात निकालती ही चली जाती है। वह तो यह कहो कि पिताजी को दफ्तर जाना पड़ता है, स्नान भी करना पड़ता है, सो वे किसी तरह भाग निकलते हैं। नहीं तो उसकी बात का अंत ही न आए।
दूसरे लड़के ने कहा, यह कुछ भी नहीं। मेरी मां को निमित्त वगैरह की कोई जरूरत ही नहीं। उसने तो देखा कि शुरू कर देती है। यही नहीं, एक दिन पिताजी चुप बैठे थे। तो उसने कहा, "चुप क्यों बैठे हो?" और शुरू! "तुम्हें क्या लकड़बग्घा मार गया है? ऐसे चुप बैठे हो जैसे मैं मर ही गई!" कोई निमित्त की जरूरत नहीं।
इन लोगों से वीणा, बात भी क्या करेगी? इनसे बात करेगी तो जरूर पागल हो जाएगी। दीवालों ने तो कभी किसी को पागल नहीं किया।
तू कहती है--
दीवारों से बातें करना अच्छा लगता है
हम भी पागल हो जाएंगे ऐसा लगता है
असंभव! अगर दीवालों से ही बातें की तो पागल नहीं हो सकती। एक उल्लेख नहीं पूरी मनुष्य-जाति के इतिहास में। एक बोधिधर्म का उल्लेख है, नौ साल तक बातें की, परम बोधि को उपलब्ध हुआ। पागल का तो कोई उल्लेख ही नहीं है। पागल दीवालों से बातें नहीं करते। पागलों के लिए तो पूरी पृथ्वी उपलब्ध है। एक से एक पहुंचे हुए पागल यहां हैं।
दो प्रोफेसर पागल हो गए थे। यूं भी प्रोफेसर करीब-करीब पागल होते हैं, नहीं तो प्रोफेसर ही नहीं हो सकते। पागल होना तो अनिवार्य योग्यता है। जरा ज्यादा हो गए थे। मतलब सीमा के बाहर निकल गए थे। तो उनको पागलखाने में रखा गया। जगह की कमी थी, इसलिए दोनों प्रोफेसर को एक ही कमरे में रखा गया। मनोवैज्ञानिक यह जानने को उत्सुक था कि ये लोग बात क्या करते हैं! तो वह सुनता था दीवाल के पास छिप कर। दरवाजे के छेद से, चाबी के छेद से देखता भी, सुनता भी। बड़ा हैरान हुआ, क्योंकि दोनों की बातों में कोई तुक नहीं था, कोई संगति नहीं थी। एक कहता आसमान की तो दूसरा कहता पाताल की। कोई लेना-देना नहीं। मगर एक बात बड़ी गजब की थी कि जब एक बोलता तो दूसरा बिल्कुल चुपचाप बैठ कर सुनता। बीच-बीच में सिर भी हिलाता। जब पहला खतम करता तो दूसरा शुरू करता और पहला चुप हो जाता और बीच-बीच में सिर हिलाता। और संबंध कोई था ही नहीं बातचीत का, किसी तरह का संबंध नहीं था। कोई सूत्र नहीं था। उसे हैरानी इसी बात से हुई। यह तो बात हैरानी की नहीं थी कि दोनों अल्ल-बल्ल बक रहे थे। कहां-कहां की बातें कर रहे थे। दूसरे की बात से पहले की बात का कहीं कोई सुर-ताल नहीं था। मगर हैरानी की बात यह थी--ये तो पागल थे तो ठीक है--हैरानी की बात यह थी कि जब एक बोलता है तो दूसरा क्यों चुप हो जाता है! और चुप ही नहीं हो जाता, बीच-बीच में सिर भी हिलाता है।
तो उसने उन दोनों से पूछा कि महानुभाव! इतना राज भर मुझे बता दो कि जब
एक बोलता है तो दूसरा चुप क्यों हो जाता है? उन्होंने कहा, तुमने हमें क्या समझा है? तुमने हमें पागल समझा है? अरे यह तो वार्तालाप का नियम है कि

जब एक बोले तो दूसरा चुप हो जाए और सिर हिलाए। सो हम वार्तालाप का नियम पालन करते हैं।
लोग वार्तालाप का नियम ही पालन कर रहे हैं। जरा तुम गौर करो, खुद अपने
पर ही गौर करो। जब तुम दूसरे से बात कर रहे होते हो तो तुम वार्तालाप का नियम ही पालन कर रहे होते हो। वह बोल रहा है तो तुम चुप रहते हो। और अगर वह तुम्हें बोलने ही नहीं देता, तो तुम लोगों से कहते हो कि बड़ा बोर है! बोर का मतलब यह कि तुम्हें बोर नहीं करने देता, अकेले ही किए जाता है। बोर किए ही चला जाता है, तुम्हें मौका ही नहीं देता। तुम्हें भी मौका दे तो फिर तुम कहते हो--"अहा, वार्तालाप में मजा आ गया! कैसा प्यारा आदमी है!" लेकिन उसे तुम्हें भी मौका देना चाहिए।
तुम जरा गौर करना। जब तुम किसी से बात कर रहे हो तो तुम सुन रहे हो उसकी बात? तुम बिल्कुल नहीं सुन रहे। तुम्हारे भीतर हजार और बातें चल रही हैं जिनको तुम सुन रहे हो। फिर भी तुम सिर हिलाते हो; और ठीक समय पर हिलाते हो; जब हिलाना चाहिए तब सिर हिलाते हो। भीतर तुम अपना गणित बिठा रहे हो। भीतर तुम अपना हिसाब बिठा रहे हो। तुम्हें उस आदमी से कुछ लेना-देना नहीं। वह क्या बक रहा है, तुम जानते हो कि बकने दो। जब अपना समय आएगा, देख लेंगे। अब आता ही है अपना समय। तुम अपनी तैयारी कर रहे हो कि तुम क्या कहना चाहते हो। तुम सिर्फ प्रतीक्षा कर रहे हो कि उसकी बातों में कहीं से कोई नुस्खा मिल जाए; कोई एकाध बात ऐसी कह दे जो तुम्हारे लिए कारण बन जाए तुम्हारी बातें कहने का। बस जैसे ही कारण मिला कि तुम शुरू हुए। तुम शुरू हुए, वह चुप हो जाता है। यह मत समझना कि तुम्हें सुन रहा है; अब वह अपना गणित बिठा रहा है कि ठीक, कि बक लो थोड़ी देर, तब तक मैं भी तैयारी कर लूं, फिर मैं भी तुम्हें वह मजा चखाऊंगा कि छठी का दूध याद आ जाए। अरे थोड़ी देर की बात है, सह लो। वक्त पर सिर हिलाएगा, मुस्कुराएगा, हां भरेगा; मगर भीतर अपना गणित बिठा रहा है।
वीणा, लोगों से बात करो तो पागल हो सकती हो। दीवालें बेचारी बहुत निर्दोष हैं। दीवालें पागल न कर सकेंगी। और यह अच्छा लक्षण है कि दीवालों से बातें करना अच्छा लगने लगा है। यह पागल होने का लक्षण नहीं है; यह पागलपन से छूटने का लक्षण है। यह शुरुआत है। इसको ध्यान बना लो। और जब दीवाल तुम से कुछ भी नहीं कह रही है तो दीवाल को ज्यादा न सताओ। डर यह है कि दीवाल न पागल हो जाए। तुम्हारे पागल होने का कोई डर नहीं! तुम तो पागल हो ही, वीणा! अब और क्या खाक पागल होओगी! डर यह है कि दीवाल पागल न हो जाए। सामर्थ्य की सीमा है।
बोधिधर्म न मालूम किस मजबूत दीवाल के पास बैठा था! पुराने जमाने की दीवालें होती भी बड़ी थीं। आजकल की पतली दीवालें कि तुम दीवाल से बातें करो और पड़ोसी जवाब दे कि हां, बाई ठीक कह रही। सत्य वचन! अरे, यही तो हम कहते हैं!
लोग कहते हैं पुराने जमाने में दीवालों को कान होते थे। नहीं होते थे। अब होते हैं। कान ही नहीं होते, मुंह भी होते हैं। दीवालें इतनी पतली हैं कि डर यह है कि पास-पड़ोस के लोग जवाब न देने लगें। इसलिए ज्यादा दीवाल को मत सताना। थोड़े दिन ठीक, फिर दीवाल पर दया करो। जब दीवाल के सामने ही बैठे हैं तो क्या कहना, क्या सुनना! फिर दीवाल जैसे ही मौन, दीवाल जैसे ही कोरे हो जाना चाहिए। दीवाल जैसे ही चुप हो जाना चाहिए। और वही चुप्पी कुंजी है। विक्षिप्त कोई हो नहीं सकता चुप होने से। चुप होने से व्यक्ति विमुक्त होता है। यह तुम्हारे भीतर चलती बकवास है जो तुम्हें विक्षिप्त कर सकती है--जो विक्षिप्त कर रही है! प्रत्येक आदमी पागल है।
खलील जिब्रान ने एक छोटी सी घटना लिखी है। उसका एक मित्र पागल हो गया।
तो वह उसको मिलने पागलखाने गया। मित्र बगीचे में पागलखाने के बैठा हुआ था, बड़ा प्रसन्न था। खलील जिब्रान सहानुभूति प्रकट करने गया था। वह इतना प्रसन्न था कि सहानुभूति प्रकट करने का मौका ही न मिले। प्रसन्न आदमी से क्या सहानुभूति प्रकट करो! वह तो यूं मस्त हो रहा था, वृक्षों के साथ डोल रहा था, पक्षियों के साथ गुनगुना रहा था। पागल ही जो था।

फिर भी खलील जिब्रान तो अपनी तय करके आया था, तो बिना कहे जा नहीं सकता था। कहा कि भई, बहुत दुख होता है यह देख कर कि तुम यहां हो।
उस आदमी ने कहा, "मुझे देख कर तुम्हें दुख होता है? अरे, मुझे देख कर तुम्हें दुख नहीं होना चाहिए। हालत उलटी है। तुम्हें देख कर मुझे दुख होता है। मैं तो जब से इस दीवाल के भीतर आया हूं, पागलखाने के बाहर आ गया। दुख मुझे होता है कि तुम अभी भी उस बड़े पागलखाने में हो--दीवाल के बाहर जो पागलखाना है। यहां तो थोड़े से चुनिंदे लोग हैं जो पागल नहीं। दीवाल के बाहर है असली पागलखाना।"
खलील जिब्रान तो बहुत चौंका। बात में थोड़ी सचाई भी थी। रात सो नहीं सका। विचारशील व्यक्ति था, सोचने लगा कि बात में थोड़ी सचाई तो है। दीवाल के बाहर एक बड़ा पागलखाना ही तो है।
तुम खुद ही इसका परीक्षण कर सकते हो। दस मिनट के लिए तुम्हारी खोपड़ी में जो भी चलता है उसको कागज पर लिखो। संकोच न करना, संपादन न करना। कुछ काटना नहीं, पीटना नहीं। किसी को बताना नहीं है, द्वार-दरवाजे बंद रखना। सिगड़ी जला कर रखना। जैसे ही लिख लो, जल्दी से डाल देना; किसी के हाथ न लग जाए! इसलिए डरने की कोई जरूरत नहीं है। जो आए मन में, जैसा आए मन में, लिखना।
और तुम बड़े हैरान होओगे। क्या-क्या तुम्हारे मन में आता है! पड़ोसी का कुत्ता भौंकने लगता है और तुम्हारे मन में चला कुछ--कि यह कुत्ता क्यों भौंक रहा है! ये हरामजादे कुत्ते! इनको कोई काम ही नहीं है! किसी कोशांति से न रहने देंगे।... चल पड़ी गाड़ी, मालगाड़ी समझो! हर डब्बे में सामान भरा है। तब तुम्हें याद आएगा कि अरे तुम्हारी एक प्रेयसी हुआ करती थी; उसके पास भी कुत्ता था। अब गाड़ी चली। कुत्ते ने सिलसिला शुरू करवा दिया। कुत्ता भी क्या वक्त पर भौंका! कुछ देर प्रेयसी की बातें चलेंगी। फिर उसकी मां ने कैसे बिगाड़ खड़ा किया। उसके दुष्ट बाप ने किस तरह बाधा डाली। समाज किस तरह आड़े आ गया।
तुम कहां जाकर पहुंचोगे अंत में, कहना मुश्किल है। और जब तुम लौट कर पूरा कागज पढ़ोगे तो तुम्हें भरोसा ही नहीं आएगा कि इसमें क्या सिलसिला है? क्या तुक है? कोई वचन आधा ही आकर खतम हो जाता है। उसमें पूर्ण विराम भी नहीं लगता। उसके बीच में ही दूसरा वचन घुस जाता है। बीच-बीच में फिल्मी गाने आते हैं--लारे-लप्पा! गीता के वचन भी आते हैं--न हन्यते हन्यमाने शरीरे! कुछ हिसाब ही नहीं। क्या-क्या नहीं आता! पंद्रह मिनट के, दस मिनट के प्रयोग से ही तुम साफ समझ लोगे कि तुम्हारे भीतर जो छिपा है वह विक्षिप्त है। और क्या विक्षिप्तता होगी? तुम यह कागज किसी को बता भी न सकोगे।
आदमी पागल ही है। और उसके पागलपन का कुल कारण इतना है कि विचारों का
जो कुंभ-मेला उसके भीतर लगा हुआ है... । क्या-क्या विचार! नागा बाबा! कैसे- कैसे नागा बाबा कि जननेंद्रिय से बांध कर जीप को घसीट दें! ऐसे-ऐसे विचार! और कुंभ का मेला! उसमें क्या नहीं! हर चीज देखो। बंबई की नंगी धोबन देखो। अब बंबई और नंगी धोबन का क्या संबंध है!
बचपन में मेरे गांव में आते थे लोग। एक छोटा सा डब्बा, मगर उसमें बंबई
की नंगी धोबन जरूर होती थी। मैं कई बार सोचा कि बंबई से और नंगी धोबन का क्या संबंध! और अब तो बंबई भी न रही, अब तो मुंबई हो गई! अब नंगी धोबन का क्या होगा?
ऐसे-ऐसे विचार आएंगे, ऊंचे विचार आएंगे! तुम कभी कल्पना भी नहीं कर सकोगे कि क्या-क्या तुम्हारे भीतर कचरा-कबाड़ भरा हुआ है। इसको एक दफा देखो गौर से।
तो वीणा, दीवाल से बातें करने से कोई पागल नहीं होता। मुल्ला नसरुद्दीन कह रहा था, "जिसने यह सिद्ध किया है कि पृथ्वी घूमती है, वह अवश्य भंगेड़ी रहा होगा।"
मैंने कहा, "तुझे क्या हो गया नसरुद्दीन? कैसे तुझे इस बात का पता चला? कैसे तूने जाना?"

उसने कहा, "इसमें क्या मामला है? कल रात भांग खाने के बाद मुझे भी ऐसा
ही लगा कि पृथ्वी घूम रही है। उसके पहले कभी मुझे ऐसा अनुभव ही नहीं हुआ था। निश्चित ही, जिसने यह सिद्ध किया वह भंगेड़ी रहा होगा।"
तू कहती है--
दीवारों से बातें करना अच्छा लगता है
हम भी पागल हो जाएंगे ऐसा लगता है
आंखों को भी ले डूबा इस दिल का पागलपन
आते-जाते जो मिलता है तुम सा लगता है
यह तो पागलपन की बात न हुई। यह तो बड़े बोध की बात हुई। यह तो पहली किरण उतरी। मेरे प्रेम में तुम्हें सब व्यक्ति मेरे जैसे लगने लगें तो ही वह प्रेम सच्चा है। मुझ पर ही अटक जाए तो सड़ जाएगा। जब भी प्रेम अटकता है तो सड़ जाता है। प्रेम प्रवाह है; फैलता ही जाना चाहिए, फैलता ही जाना चाहिए। अनंत तक फैलता जाना चाहिए। मुझसे तुम्हारा प्रेम, मुझ पर रुक जाए तो बंधन हो गया, बोझ हो गया। मैं द्वार बनूं, बस इससे ज्यादा नहीं। मेरे द्वार से तुम्हारा प्रेम निकले और खुले आकाश में फैलता जाए, फैलता जाए, सारे चांद-तारों को अपने भीतर ले ले। कुछ तुम्हारे प्रेम के बाहर न रह जाए। जरूर पहले-पहल तो यह पागलपन जैसा लगेगा वीणा, क्योंकि हमें यही सिखाया गया है कि एक से ही प्रेम करना। प्रेम को एक से ही बंधना चाहिए, प्रेम बंधन है, यही हमें सिखाया गया है।
मेरे पास लोगों के शादियों के निमंत्रण-पत्र आते हैं कि "वर-वधू विवाह
के बंधन में बंध रहे हैं।" क्या गजब के लोग! कम से कम निमंत्रण-पत्र में तो ये घोषणाएं न करो। मगर बात छिपाए भी छिपती नहीं। उन्होंने सोचा ही नहीं कि बंधन का क्या मतलब! "बंधन में बंध रहे हैं।" प्रेम में मुक्त होना चाहिए कि बंधना चाहिए? प्रेम मुक्ति है, बंधन नहीं। और जो बांध ले वह प्रेम के नाम पर धोखा है, कुछ और है।
तू कहती है--
आंखों को भी ले डूबा इस दिल का पागलपन
आते-जाते जो मिलता है तुम सा लगता है
ऐसा ही होना चाहिए।
मन की खिड़की को
खुली ही रहने दो
बंद मत करो।
आने दो भीतर
ऊषा की किरणों को,
विहंगों के कलरव को,
हवा की लहरों को,
फूलों की सुगंधों को।
आने दो भीतर जलती दोपहर,
आने दो धूल भरे अंधड़,
आने दो तूफानी बौछारें,
घोर नैश अंधकार
किंचित मत डरो।
आश्वस्त रहो
फिरझांकेगी
इसी खिड़की में से भोर,
पंछी फिर चहकेंगे,
फूल फिर महकेंगे।
मन की खिड़की को
खुली ही रहने दो
बंद मत करो।
प्रेम तो खुलना है, खिलना है। जैसे फूल खिल जाए। और जब फूल खिलता है और सुगंध उड़ती है तो फिर किन्हीं नासापुटों का पता लेकर थोड़े ही उड़ती है, कि

फलाने की नाक तक जाना है, कि हम तो वहीं जाएंगे! जब सुगंध उड़ती है तो जिसे लेना हो ले ले, जिसे पीना हो पी ले। प्रेम मुक्ति है। प्रेम परम मुक्ति है। इस एक से बंधने की धारणा ने बड़ी हैरानी खड़ी की। इससे प्रेम ईर्ष्या बन गया। इससे प्रेम परिग्रह बन गया। इससे प्रेम एक संघर्ष बन गया। इससे प्रेमी दुश्मन हो गए, मित्र नहीं। प्रेमी और मित्र, करीब-करीब असंभव बात है। प्रेमी मित्र होते ही नहीं। एक-दूसरे के बिल्कुल दुश्मन। एक-दूसरे के पीछे पड़े--हाथ धोकर पीछे पड़े! एक-दूसरे को ठिकाने लगाने में लगे। यह कोई प्रेम है? लेकिन आदमी बेहोश है, तो प्रेम करे तो प्रेम बेहोश। जो करे वही बेहोश। बेहोश आदमी से और अपेक्षा नहीं हो सकती।
मेरे संन्यासी एक ही तो काम में लगे हैं कि कैसे यह मूर्च्छा टूटे? कैसे इस मूर्च्छा के पार जाएं? कैसे जागरण हो? और जैसे-जैसे जागरण होगा वैसे-वैसे उस जागरण के साथ जीवन का सारा सिलसिला बदलेगा, धारा बदलेगी, धारा का रुख बदलेगा। फिर प्रेम फैलेगा--यूं जैसे कि कोई कंकड़ फेंक दे शांत झील में। कंकड़ के गिरते ही लहर उठती है। फिर और लहर, फिर और लहर, लहरों पर लहरें उठती जाती हैं और दूर-दूर किनारों तक फैलती चली जाती हैं। ऐसा ही प्रेम शुरू तो एक से होता है, लेकिन फिर फैलता चला जाता है। और इस अस्तित्व के तो कोई किनारे नहीं। इसलिए फिर कहीं रुकता ही नहीं। फिर रुकने का कोई उपाय ही नहीं है। और जिसने भी प्रेम को रोकना चाहा, उसने उसे विषाक्त कर दिया। उसने उसे मार डाला, उसने भ्रूण-हत्या कर दी।
इस दुनिया में सबसे बड़ी हत्या प्रेम की हत्या है। आदमी को मार डालो, इतना बुरा नहीं; मगर उसके प्रेम को न मारो। क्योंकि आदमी मरेगा तो फिर जन्म ले लेगा। लेकिन उसका प्रेम मार डाला, तोशायद फिर भी जन्म ले ले, मगर वह जो प्रेम मर गया है, फिर पनपेगा कि नहीं? और फिर भी उस प्रेम को मारने वाले मौजूद रहेंगे, क्योंकि तुम्हीं कोई एक हत्यारे नहीं हो। प्रेम को मारने का इतना आयोजन है।
बच्चा पैदा हुआ और हमने उसके प्रेम को मारना शुरू किया। मां कहती है, "मुझे प्रेम करो, क्योंकि मैं तुम्हारी मां हूं। और मुझसे ही प्रेम करना।" बाप कहता है, "मुझे प्रेम करो, क्योंकि मैं तुम्हारा बाप हूं।" जैसे कि बाप होना कोई प्रेम के लिए अनिवार्य कारण है। बाप होंगे तो होंगे। मगर इससे प्रेम उत्पन्न होना ही चाहिए, ऐसा क्या है? सिर्फ बाप होना कानूनी अधिकार हो सकता है। लेकिन प्रेम का क्या अधिकार है?
प्रेम को जन्माने की कोशिश नहीं की जाती; प्रेम को जबरदस्ती आरोपित करने की कोशिश की जाती है। और बच्चा मजबूर है, क्योंकि असहाय है। उसे मां को प्रेम करना होगा, नहीं तो जीना मुश्किल हो जाएगा। मां को देख कर मुस्कुराना होगा, चाहे मुस्कुराहट आती हो या न आती हो। यहीं से राजनीति शुरू होती है। फिर जिंदगी भर यह मुस्कुराएगा। इसकी मुस्कुराहट बस ओंठों पर, ओंठों से जरा भी गहरी नहीं। उतनी ही गहरी समझो जितना लिपस्टिक जाता है। इससे ओंठ थोड़े खराब ही हो जाते हैं।
लिपस्टिक लगाने वाली स्त्रियों के ओंठ देखे? बिना लिपस्टिक लगाए जरा देखना, चमड़ी खराब हो गई, सूख गई। वह जो धोखा दिया उसमें सब कुछ खराब होने ही वाला है। यह हंसी भी ओंठों पर। यह प्रेम भी ओंठों पर। यह प्रेम भी बातचीत।
मुल्ला नसरुद्दीन घर आया। अखबार पढ़ने बैठ गया।
सभी पति बैठते हैं। यह पति-धर्म है कि घर में आए कि जल्दी से अखबार उठाया। क्योंकि और कहां छिपें? कोई जगह नहीं मालूम होती जहां छिप जाएं।
पत्नी ने चौतरफा राज किया हुआ है। और घूम रही है वह सब तरफ अपना बेलन लिए।
ये बेचारे अखबार, चाहे पढ़ें, चाहे न पढ़ें... । मुल्ला नसरुद्दीन पढ़ ही नहीं रहा था, क्योंकि जाहिर था, उलटा अखबार पकड़े बैठा था। पत्नी तो भनभना गई। उसने कहा कि हद हो गई। तुम अखबार पढ़ नहीं रहे हो। तुम उलटा अखबार लिए बैठे हो तो पढ़ कैसे रहे हो? और उसने तो एकदम शोरगुल मचा दिया कि अब तुम्हें मुझसे प्रेम ही नहीं रहा।
पत्नियों के तर्क का तो कोई हिसाब ही नहीं। कहां अखबार! उलटा ही पढ़ रहा है, तो पढ़ने दो। उलटी खोपड़ी है समझो। इससे तुम्हारा क्या बिगड़ रहा है? बेचारा सिर्फ उलटा अखबार पढ़ रहा है, निर्दोष। किसी का कोई नुकसान नहीं कर

रहा है, न कोई हिंसा कर रहा है, न कोई हड़ताल कर रहा है, न कोई घिराव कर रहा है, न कोई आंदोलन कर रहा है; चुपचाप बैठा उलटा अखबार पढ़ रहा है। इसमें किसी का क्या बिगाड़ रहा है? वीणा ही जैसा, जैसे कि दीवाल के सामने बैठी। उलटा अखबार पढ़ रहा है--ध्यान कर रहा है।
मगर पत्नी तो बिगड़ पड़ी, "तुम अखबार पढ़ नहीं रहे हो। तुम सिर्फ मुझसे बचना चाहते हो। तुम्हें मेरा चेहरा देखने में कष्ट होता है। और पहले तुम मुझसे कहते थे कि अहा! तू क्या है! पूर्णिमा का चांद भी तेरे सामने फीका है! और अब उलटा अखबार पढ़ रहे हो। तुम्हें मुझसे अब जरा भी प्रेम नहीं रहा।" और वह तो दहाड़ मार कर रोने लगी।
पत्नियों का क्या भरोसा, कब क्या करने लगें! इसीलिए तो पुरुष निरंतर सदियों से कहता रहा है--स्त्री को कोई नहीं समझ सकता। स्त्री को समझ सकते हो, गलती बात कह रहे हो; पत्नी को कोई नहीं समझ सकता। स्त्री को समझने में क्या कठिनाई है? सीधा-सादा मामला है, कोई ऐसी अड़चन नहीं। मगर पत्नी को समझना बहुत कठिन है। और पत्नी तुम्हीं बना बैठे। तुम पति बन गए। पति का मतलब मालिक, तो बेचारी पत्नी क्या करे? पत्नी का मतलब, जो पति से तनी-तनी रहे। रहेगी ही! जब तुम पति बन कर बैठ गए तो वह क्या करे! वह तनी-तनी रहेगी। पत्नी तन गई, जोर से रोने लगी कि अब तुम्हें मुझसे प्रेम ही नहीं रहा। नसरुद्दीन ने अखबार बंद किया और कहा, "फजलू की मां! कैसी बातें कर रही हो? अरे मुझे प्रेम है। हजार बार कहता हूं, कसम खाकर कहता हूं, अल्लाह की कसम खाकर कहता हूं कि मुझे प्रेम है। और तेरा चेहरा पूर्णिमा के चांद से भी ज्यादा सुंदर है। और तेरे शरीर की सुगंध फूलों से भी ज्यादा महकदार है। फिर-फिर कहता हूं कि मुझे तुझसे प्रेम है। और अब यह अपना मुंह बंद कर और मुझे अखबार पढ़ने दे!"
क्या करो, मजबूरी है तो कहना पड़ता है प्रेम है। मगर असलियत को कहां तक छिपाओगे? वह निकल ही आती हैः "अब अपना मुंह बंद कर। अब बहुत हो चुकी बकवास। और मुझे अखबार पढ़ने दे। अरे, शांति से एक घड़ी भर तो बैठ लेने दे। थका-मांदा दफ्तर से आता हूं। और इधर प्रेम का राग! न समय का कोई ध्यान, न ऋतु का कोई सवाल, बस प्रेम का राग छेड़ो!"
आदमी सिर्फ कह रहा है कि प्रेम। कहना पड़ रहा है। बचपन से लेकर बुढ़ापे
तक यह सिलसिला जारी है। सबके पीछे मूल कारण यह है कि हम प्रेम पर कब्जा करने की कोशिश करते हैं। मां-बाप करने की कोशिश करते हैं, फिर पति-पत्नी करने की कोशिश करते हैं, फिर बच्चे करने की कोशिश करते हैं। हम प्रेम को एक-दूसरे पर मालकियत का साधन बनाते हैं, जब कि सच्चा प्रेम मुक्ति है। वीणा, तुझे मुझसे प्रेम है तो स्वभावतः मैं ही तुझे सबमें दिखाई पड़ने लगूंगा। दिखाई पड़ना ही चाहिए। प्रेम फैले तो ही सत्य है। फैलता ही चला जाए तो विराट सत्य है। कहीं रुके ही न। यह कुछ पागल होने की बात नहीं है। यह तोशुभ समाचार है।
मेरी मुहब्बत की कोई कीमत नहीं है, कोई सिला नहीं है।
मुझे किसी से कोई शिकायत नहीं है, कोई गिला नहीं है।।
मैं अपने मजबूर दिल के हाथों कुछ इतना मजबूर हो गया था।
मैं तुमको अपनी तरह का इन्सां समझ के मसहूर हो गया था।।
खबर न थी पत्थरों के सीने में दिल बनाता रहा हूं अब तक।
मैं बर्फ की सिल पे अपनी चिंगारियां लुटाता रहा हूं अब तक।।
मैं गीत गाता रहा हूं हाथों में एक टूटा सितार लेकर।
रहा हूं मैं बेकरार अक्सर तुम्हें खुद अपना करार देकर।।
मेरी मुहब्बत, मेरी अकीदत का अब मुझे ये सिला मिला है।
कि तेरे जख्मे-जिगर को मेरे ही तारे-दिल से सिया गया है।।
अगर कोई और मेरे अहदे-वफा का आईनादार होता।
अगर तुम्हारी जगह कोई और दूसरा गमगुसार होता।।
तो मैं उसे अपनी रूह से अपने दिल से बाहर ढकेल देता।
मैं उसके सिर पर हिकारतों के जहन्नुमों को उंडेल देता।।
मगर मैं अब तुमको क्या कहूं, मेरे रूहो-दिल का सरूर हो तुम।
मुझे अंधेरा भी दो तो खुश हूं कि मेरी आंखों का नूर हो तुम।।

आदमी का प्रेम विक्षिप्त है। आदमी का प्रेम उसकी सारी मूर्च्छा को अपने साथ लिए हुए है। अब यह व्यक्ति गीत गा रहा है--
अगर कोई और मेरे अहदे-वफा का आईनादार होता।
अगर तुम्हारी जगह कोई और दूसरा गमगुसार होता।।
तो मैं उसे अपनी रूह से अपने दिल से बाहर ढकेल देता।
मैं उसके सिर पर हिकारतों के जहन्नुमों को उंडेल देता।।
यह असलियत है।
मगर मैं अब तुमको क्या कहूं, मेरे रूहो-दिल का सरूर हो तुम।
मुझे अंधेरा भी दो तो खुश हूं कि मेरी आंखों का नूर हो तुम।।
आदमी प्रेम के नाम पर भी केवल पाखंड पालता है। असलियत कुछ और, भीतर कुछ और, बाहर कुछ और। कहता कुछ है, जीता कुछ है।
मेरी शिक्षा का बुनियादी हिस्सा हैः तुम्हारा प्रेम ध्यान से उमगना चाहिए, तो ही प्रेम हो सकेगा। प्रेम ध्यान की चरम शिखा है। प्रेम ध्यान की ज्योति है। जहां ध्यान नहीं है, वहां प्रेम नहीं है। लाख तुम उपाय करो, सब उपाय व्यर्थ जाएंगे। हजार तुम चेष्टाएं करो, नहीं कोई चेष्टा काम आने वाली है। तुम्हारी सारी चेष्टाएं बेमानी हैं। एक ही संभावना है तुम्हारे प्रेम के सत्य होने की और वह है--ध्यान से उमगे।
वीणा, दीवारों के सामने बैठ, मगर बातें मत कर। दीवाल के सामने चुप बैठ। कोरी दीवाल पर अपनी व्यर्थ की विक्षिप्तता को मत उंडेल। दीवाल के सामने दीवाल ही होने लगो। और दीवाल सच में ही उपयोगी ध्यान का साधन हो सकती है। कितनी देर मन चलेगा? महीने, दो महीने, साल, दो साल। बैठती ही रहो दीवाल के सामने। धीरे-धीरे मन विदा हो जाएगा। दीवाल जैसा ही कोरापन भीतर भी आ जाएगा। और जब भीतर भी दीवाल जैसा कोरापन होगा, तो जीवन की परम संपदा मिल गई। बहुतेरे हैं घाट! दीवाल भी घाट हो सकती है!

आखिरी सवालः आपके धर्म का नाम क्या है? आपके धर्म का आराध्य कौन है? आराधना क्या है? आपके धर्म का लक्ष्य क्या है? आपके आस-पास हजारों लोग जो संगठन बना रहे हैं, उसका उद्देश्य क्या है? कृपया यह भी बताएं कि इस उदास मनुष्यता का कल्याण कब और कैसे होगा?

चिंतामणि पाठक, जब तक तुम जैसे लोग हैं, जब तक चिंतामणि पाठक जीवित हैं, तब तक इस उदास मनुष्यता का कल्याण नहीं हो सकता। असंभव है। तुम्हारा प्रश्न ही सबूत दे रहा है कि तुम न होने दोगे कल्याण, या कि तुम जबरदस्ती कल्याण करने को उतारू हो। वह भी अकल्याण का ही उपाय है।
और तुम्हें उदास मनुष्यता के कल्याण की क्या फिकर? चिंतामणि पाठक, पहले अपनी चिंता से तो मुक्त होओ। तुम चिंता को मणि समझे बैठे हो और उदास मनुष्यता की चिंता कर रहे हो! जरा होश तो सम्हालो। मनुष्यता कहां है? खोजने निकलो जरा, मनुष्यों को पाओगे, मनुष्यता को कहीं भी नहीं पाओगे। मनुष्यता तो कोरा शब्द है। और ये कोरे शब्द आदमी को खूब भटकाए हैं और इन्हीं कोरे शब्दों ने आदमी को उदास बना रखा है--"मनुष्यता का कल्याण! राष्ट्र का कल्याण! समाज का कल्याण!"
न कहीं समाज है, न कहीं राष्ट्र है, न कहीं मनुष्यता है। जहां भी पाओगे व्यक्ति को पाओगे। व्यक्ति सत्य है, बाकी सब बकवास है। और अगर चाहते हो कि व्यक्ति की उदासी कैसे मिटे, तो कम से कम अपनी उदासी तो मिटाओ--तुम्हीं पहले व्यक्ति हो! वहीं से शुरू करो। अपना दीया तो जलाओ। अगर खुद अंधेरे में हो तो तुम किसका दीया जलाओगे? डर यह है कि कहीं तुम किसी के जलते दीये को न बुझा दो।
अंधा आदमी दूसरों की आंखें भी फोड़ सकता है। और बड़ी नेकनीयत, कि इसको
भी अपने जैसा कर लूं। कैसा प्यारा भाव! कैसी सेवा की सदिच्छा कि इसको भी अपने जैसा कर लूं! कि यह बेचारा अंट-संट चीजें देखता है! यह भ्रांति में पड़ा हुआ है। कहां प्रकाश है, कहां रंग हैं, कहां इंद्रधनुष हैं, कहां चांद-तारे हैं? यह किन बातों में पड़ा है, किन सपनों में खोया है? इसको रास्ते पर लगाऊं! इसकी आंखें फोड़ दी जाएं तो यह ठिकाने पर आ जाए। अगर अंधे सेवा

करेंगे तो आंख वालों को अंधा करेंगे। अगर मूर्च्छित सेवा करेंगे तो और मूर्च्छा फैलाएंगे। अंधेरे से भरे लोग और दे भी क्या सकते हैं? हम वही तो दे सकते हैं जो हमारे पास है।
लेकिन चिंतामणि पाठक बड़े गहरे सवाल पूछ रहे हैं--उनके हिसाब से! पूछते हैंः "आपके धर्म का नाम क्या है?"
जैसे कि धर्म का कोई नाम हो सकता है! जब धर्म का नाम होता है तो समझो अधर्म हो गया। धर्म तो अनाम है, क्योंकि परमात्मा अनाम है। और अनाम को खोजना नाम वाले धर्मों में नहीं हो सकता। विशेषण जहां जुड़ गए वहां तो तुम्हारे आग्रह जुड़ गए।
मेरे धर्म का कोई नाम नहीं। सच तो यह है कि मैं अपने धर्म को धर्म भी नहीं कहता, सिर्फ धार्मिकता कहता हूं। मेरा जोर गुण पर है, सिद्धांतों पर नहीं, नामों पर नहीं, रूपों पर नहीं।
प्रेम का कोई नाम होता है? किसी से पूछो कि आपके प्रेम का क्या नाम है?
वह बेचारा क्या कहेगा? वह सिर्फ तुम्हारी तरफ भौचक्का होकर देखेगा कि यह आदमी पगला गया। प्रेम का नाम पूछ रहा है! प्रेम का कोई नाम होता है? प्रेम ईसाई होता है, कि हिंदू, कि मुसलमान, कि जैन, कि बौद्ध? और अगर प्रेम का कोई नाम नहीं होता, तो धर्म तो प्रेम की पराकाष्ठा है। उसका तो कैसे नाम हो सकता है? मेरे धर्म का कोई नाम नहीं है।
तुम्हारे ऐजाजे-हुस्न की मेरे दिल पर लाखों इनायतें हैं।
तुम्हारी ही देन मेरे जौके-नजर की सारी लताफतें हैं।।
जवां है सूरज जबीं पे जिसके तुम्हारे माथे की रोशनी है।
सहर हसीं है कि उसके रुख पर तुम्हारे रुख की सबाहतें हैं।।
मैं जिन बहारों की परवरिश कर रहा हूं जिंदाने-गम में हमदम।
किसी के गेसू और चश्मो-रुखसारो-लब की रंगीं हिकायतें हैं।।
न जाने छलकाए जाम कितने, न जाने कितने सुबू उछाले।
मगर मेरी तिश्नगी कि अब भी तेरी नजर से शिकायतें हैं।।
मैं अपनी आंखों में सैले-अश्के-रवां नहीं, बिजलियां लिए हूं।
जो सरबुलंद और गयूर हैं अहले-गम ये उनकी रिवायतें हैं।।
मैं रात की गोद में सितारे नहीं शरारे बखेरता हूं।
सहर के दिल में जो अपने अश्कों से बो रहा हूं बगावतें हैं।।
धार्मिकता एक बगावत है, एक विद्रोह है। और धर्म परंपराएं हैं। धर्म हैं अतीत, जिनका वक्त जा चुका, जो कभी के मर चुके हैं और जिनकी लाशों को तुम ढो रहे हो। उन लाशों में कभी प्राण थे, यह सच है। मगर जब प्राण थे तब वे लाशें नहीं थीं; तब वे भी धार्मिकताएं थीं। बुद्ध के पास जो घट रहा था वह धार्मिकता थी। और अब बौद्ध धर्म के नाम पर जो दुनिया में है वह केवल लाश है। उसका रंग-रूप, उसका रंग-ढंग, उसका आकार-प्रकार बिल्कुल वैसा ही है जैसे बुद्ध की धार्मिकता का था। बस एक बात की कमी है, उसमें प्राण थे और यह निष्प्राण है। उसमें दिल धड़कता था, उसकी सांसें चलती थीं; और अब इसकी कोई सांसें नहीं चलतीं और कोई दिल नहीं धड़कता। उस वीणा में संगीत था, उसके तार अभी जिंदा थे; और अब इसके तार कभी के टूट गए हैं, अब इसमें कोई संगीत नहीं उठता। और यही सारे धर्मों के साथ हुआ है।
मैं अपने धर्म को कोई नाम नहीं देना चाहता। मैं तो सतत बगावत सिखा रहा हूं; विद्रोह अतीत से, विद्रोह परंपरा से, विद्रोह शास्त्रों से, विद्रोह शब्दों से, विद्रोह मन से। फिर जोशेष रह जाता है वह अनाम है, विशेषण-शून्य है। उसी शून्य का नाम धार्मिकता है। उसी शून्यता में पूर्ण का फूल खिलता है।
तुम पूछते होः "आपके धर्म का आराध्य कौन है? आराधना क्या है?"
मैं किसी व्यक्तिवाची ईश्वर को नहीं मानता। परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है जो ऊपर बैठा है सातवें आकाश पर और इस दुनिया को चला रहा है। परमात्मा को व्यक्ति की भाषा में सोचना ही बुनियादी रूप से गलत है। भगवान नहीं, भगवत्ता की भाषा में सोचो।
हां, जो भगवत्ता को उपलब्ध हो जाता है उसको हमने भगवान कहा है, वह और बात। बुद्ध को भगवान कहा है, यद्यपि बुद्ध ने भगवान से इनकार किया है कि

कोई भगवान नहीं। इसी अर्थों में इनकार किया है जो मैं कह रहा हूं, कि कोई व्यक्ति नहीं है जो सारे जगत को चला रहा है और तुम्हारी खोपड़ी पर तुम्हारी किस्मत लिखता है कि तुम टैक्सी ड्राइवर होओगे, कि तुम एम जी रोड पर कपड़े की दुकान खोलोगे, कि तुम पुण्य नगरी पूना में भीख मांगोगे, कि गुंडागर्दी करोगे। और अगर ऐसा कोई परमात्मा है तो बिल्कुल पागल है। क्या-क्या बकवास लिखता है!
कोई परमात्मा नहीं है। भगवत्ता एक अनुभव है, व्यक्ति नहीं। और जब भी तुम अपनी चेतना की पूर्ण शांति को अनुभव करते हो और उस शांति में उठते हुए प्रेम के संगीत को पहचानते हो, तब भगवत्ता का अनुभव होता है।
तो तुम मत पूछो मुझसे कि मेरा आराध्य कौन है। मेरा आराध्य कोई भी नहीं। और इसलिए यहां कोई आराधना नहीं है; जब आराध्य ही नहीं तो आराधना क्या?
मैं ध्यान सिखाता हूं, आराधना नहीं। आराधना तो अनिवार्य रूप से किसी व्यक्तिवाची परमात्मा को मान कर चलती है। कोई परमात्मा है जिसकी स्तुति करो, जिसका गुणगान गाओ, जिसकी खुशामद करो--स्तुति का मतलब खुशामद--और जिस पर रिश्वत चढ़ाओ। और पता नहीं यह परमात्मा को भी कैसी-कैसी रिश्वतें पसंद आती हैं! नारियल चढ़ाओ! इनका अभी नारियल से जी नहीं भरा! सदियां हो गईं, लोग नारियल फोड़े चले जा रहे हैं।
लेकिन ये सब रिश्वतें हैं। एक नारियल चढ़ा देते हो और कहते हो कि मेरे लड़के को नौकरी लगनी चाहिए। अगर न लगी तो ख्याल रखना! अगर लग गई तो फिर नारियल चढ़ाऊंगा। अगर न लगी तो मुझसे बुरा कोई नहीं! कि मेरे घर बेटा पैदा हो जाए! एक नारियल! कीमत भी क्या चुका रहे हो? और नारियल चढ़ा कर जो बेटा भी होगा, वह भी कुछ बेटा होगा? अरे नारियल ही होगा! और नारियल लगता भी आदमी के चेहरे जैसा है; आंखें भी, दाढ़ी-मूंछ भी! बस नारियल ही पैदा होंगे।
यह कोई परमात्मा नहीं है, जिसकी तुम प्रार्थना करो, स्तुति करो। इसी
ने तुम्हें खुशामद सिखाई है। और इसीलिए भारत में रिश्वत का मिटाना बहुत मुश्किल है, असंभव है। क्योंकि यह देश तो परमात्मा तक को रिश्वत देता रहा है। ये छोटे-मोटे तहसीलदार, हवलदार, कलेक्टर, कमिश्नर, इन बेचारों की क्या हैसियत? अरे एक नारियल में परमात्मा को मना लेते हैं, थोड़ा प्रसाद चढ़ा देते हैं।
ऐसे झाड़ हैं देश में जिनमें चिंदियां लटकी हुई हैं। उन झाड़ों के जो देवता हैं, चिंदियों के प्रेमी हैं। लोग जाकर मनौती कर आते हैं कि अगर मेरे घर बच्चा हुआ तो एक चिंदी बांध जाऊंगा। और स्वभावतः, अब इतने लोग मनौतियां करेंगे तो कुछ के घर तो बच्चे पैदा ही होने वाले हैं। सो वे चिंदियां बांध जाएंगे। वे चिंदियां फिर उस वृक्ष की विज्ञापन हो जाती हैं। जब इतनी चिंदियां बंधी हैं, हजारों चिंदियां वृक्ष पर बंधी हैं, जाहिर है कि वृक्ष का देवता पहुंचा हुआ देवता है। सो और-और लोग आने लगते हैं। जिनकी चिंदियां काम नहीं आईं, जिनकी इस वृक्ष ने नहीं सुनी, वे दूसरे वृक्षों की तलाश में गए। कहीं न कहीं कोई न कोई मौके-अवसर पर उनके घर भी बेटा पैदा होगा, किसी वृक्ष पर चिंदी बांधेंगे वे। यह मूढ़ता, यह बकवास है। न कोई आराध्य है, न कोई आराधना है।
और तुम पूछते होः "आपके धर्म का लक्ष्य क्या है?"
कोई भी लक्ष्य नहीं। लक्ष्य की भाषा ही व्यवसाय की भाषा है। मेरा धर्म आनंद-उत्सव है। अब आनंद-उत्सव का कोई लक्ष्य होता है? आनंद अपना ही लक्ष्य है। किसी से पूछो, "तुम्हारे प्रेम का लक्ष्य क्या है?" बताएगा। यहां हमारे देश में तो कोई भी बता देगा प्रेम का लक्ष्य, कि एक स्कूटर पाना है। किसी को दहेज में कुछ और पाना है। क्या-क्या चीजें लोग मांग रहे हैं! प्रेम का लक्ष्य! प्रेम का लक्ष्य प्रेम नहीं है, कुछ और है।
प्रेम अगर सच में है तो प्रेम अपना लक्ष्य है, उसका कोई और लक्ष्य नहीं। प्रेम अपना आनंद है--परम आनंद है। आनंद का कोई लक्ष्य नहीं है।
धार्मिकता आनंद का पर्यायवाची है।
इश्क का नग्मा जुनूं के साज पर गाते हैं हम।
अपने गम की आंच से पत्थर को पिघलाते हैं हम।।

जाग उठते हैं तो सूली पर भी नींद आती नहीं।
वक्त पड़ जाए तो अंगारों पे सो जाते हैं हम।।
जिंदगी को हमसे बढ़ कर कौन कर सकता है प्यार।
और अगर मरने पे आ जाएं तो मर जाते हैं हम।।
दफ्न होकर खाक में भी दफ्न रह सकते नहीं।
लाला-ओ-गुल बन के वीरानों पे छा जाते हैं हम।।
हम कि करते हैं चमन में एहतमामे-रंगो-बू।
रू-ए-गेती से नकाबे-हुस्न सरकाते हैं हम।।
अक्स पड़ते ही संवर जाते हैं चेहरे के नुकूश।
शाहिदे-हस्ती को यूं आईना दिखलाते हैं हम।।
मैकशों को मुज्दा, सदियों के प्यासों को नवेद।
अपनी महफिल अपना साकी ले के अब आते हैं हम।।
एकशुभ समाचार, उनको जो सदियों के प्यासे हैं। मैकशों को मुज्दा! उनके लिए एक शुभ घड़ी, जिन्हें परमात्मा को पीने की ललक है, अभीप्सा है। सदियों के प्यासों को नवेद! और सदियों से जो प्यासे हैं, उनके लिए शुभ संदेश!
अपनी महफिल अपना साकी ले के अब आते हैं हम।।
यह तो मैकदा है, कोई मंदिर नहीं। मत पूछो कि मेरे धर्म का नाम क्या है। पियक्कड़ों का कोई धर्म होता है? मयकशों का कोई धर्म होता है? मस्ती होती है, आनंद होता है। मत पूछो मेरा लक्ष्य क्या है। कोई लक्ष्य नहीं है। यह अस्तित्व किसी लक्ष्य के लिए नहीं है। यह अस्तित्व स्वस्फूर्त आनंद है। और तुम पूछते हो कि आपके आस-पास हजारों लोग जो संगठन बना रहे हैं, उसका क्या उद्देश्य है?
न कोई संगठन है यहां, न कोई संगठन बना रहा है। लेकिन मैकदे में भी तो थोड़ी व्यवस्था करनी पड़ती है! बस मैकदे की व्यवस्था है। मैकदे का भी अपना निजाम होता है। आखिर मैकदे में किसी को साकी होना होगा, कोई सुराही लेकर आएगा, कोई प्यालियां बांटेगा, कोई सुराही से शराब ढालेगा। मैकदे का अपना निजाम होता है, अपनी व्यवस्था होती है। यह कोई संगठन नहीं, यह सिर्फ व्यवस्था है कि जो पियक्कड़ हैं वे प्यासे न रह जाएं और जो गैर-पियक्कड़ हैं उनको भीतर न आने दिया जाए।
मैकशों को मुज्दा, सदियों के प्यासों को नवेद। अपनी महफिल अपना साकी
ले के अब आते हैं हम।।
आज इतना ही।

बहुतेरे हैं घाट
दूसरा प्रवचन

प्रेम: ध्यान की ज्योति

पहला प्रश्न:
अथ यदि वे कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्,
ये तत्र ब्राह्मणाः संदर्शिनो युक्ता आयुक्ता अलूसा धर्मकामाः स्युः,
यथा ते तक्र वर्तेरन तथा तत्र वर्तेथाः।।
"यदि कभी आपको अपने कर्म या आचरण के संबंध में
संदेह उपस्थित हो तो जो विचारशील, तपस्वी,
कर्तव्यपरायण, शांत स्वभाव, धर्मात्मा विद्वान हों, उनकी
सेवा में उपस्थित होकर अपना समाधान करिए और
उनके आचरण और उपदेश का अनुसरण कीजिए।"
तैत्तरीय उपनिषद की इस सूक्ति पर प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

सत्यानंद, पहली बातः मूल में एक शब्द है जिसे तुम अनुवाद में या तो चूक गए या बचा कर निकल गए या तुमने अनुवाद में जो अर्थ उसका किया उसमें अनर्थ हो गया। उस शब्द पर ही सब निर्भर है। शब्द है ब्राह्मण।
ये तत्र ब्राह्मणाः संदर्शिनो युक्ता।
ब्राह्मण के अर्थ पर सब कुछ निर्भर करेगा।
लेकिन सत्यानंद, तुम्हारी तकलीफ भी मैं समझता हूं। ब्राह्मण का अगर अर्थ मेरे अर्थों में करो तो फिर पूरा सूत्र डगमगा जाएगा। ब्राह्मण का अर्थ है जो ब्रह्म को जाने; सीधा-सादा, साफ-सुथरा, दो और दो चार जैसा स्पष्ट। जो ब्रह्म को जाने उसके पास बैठ कर समाधान हो सकेगा। पूछने की भी जरूरत न होगी। और न ही उसके अनुसार आचरण करने की जरूरत होगी। न ही उसके उपदेश के अनुसार वर्तन करने की जरूरत होगी। उसके पास बैठ कर समाधि लग जाएगी। उसके पास बैठने की कला ही सत्संग है, समाधि है। उसके भीतर की ज्योति तुम्हारे भीतर जल उठे तो तुम्हारे भीतर भी उपनिषद का फूल खिले। फिर तैत्तरीय उपनिषद के सूत्रों की तुम्हें चिंता न करनी पड़े।
लेकिन ब्राह्मण का जो अर्थ इस सूत्र में है वह मेरा अर्थ नहीं है, नहीं हो सकता। क्योंकि जिसने ब्रह्म को जाना है वह इतना तो जानेगा ही कि आचरण किसी और के अनुसार करना पाखंड है। ब्रह्मवेत्ता यह न जाने, यह कैसे संभव? ब्राह्मणाः संदर्शिनो युक्ता। जो ब्रह्मभाव को, जो उस सम्यक दर्शन को उपलब्ध हो गया हो, जिसकी आंख खुल गई हो, जिसकी दृष्टि में जीवन का सत्य प्रकट हो गया हो, जिसके भीतर सूरज उगा हो, वह इतना न देख पाए यह असंभव है। यह हो ही नहीं सकता कि वह उपदेश के अनुसार किसी को चलाए, क्योंकि यह तो उसे साफ ही हो जाएगा कि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजता है और दूसरे का उपदेश उसकी निजता को भ्रष्ट करेगा। वह तो केवल इंगित कर सकता है--इंगित, जो कि बहुत तरल होंगे, ठोस नहीं। वह तो पानी पर लकीरें खींच सकता है, जो कि बनेंगी और तत्क्षण मिट जाएंगी। पढ़ लिया तो पढ़ लिया, चूक गए तो चूक गए। उसके उपदेश पत्थर पर खींची गई लकीरें नहीं हैं। उसके उपदेशों से परंपराएं नहीं बनतीं। उसके उपदेशों से किसी तरह के नकल करने वाले मिथ्या पाखंडियों का जन्म नहीं होता।
पाखंड पैदा ही इसलिए होता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के अनुसार चलने लगता है--लकीर का फकीर होकर। यूं जैसे कि जुही गुलाब होना चाहे। यूं जैसे कि गुलाब कमल होना चाहे। फिर उपद्रव खड़ा हुआ। फिर पाखंड होगा, फिर पागलपन होगा। जुही गुलाब नहीं हो सकती। जरूरत भी नहीं है। जुही को अगर प्रकृति ने जुही बनाया है तो जुही की जरूरत है इसलिए बनाया है। जुही के बिना यह अस्तित्व अधूरा होगा। यह सारा अस्तित्व गुलाबों से भर जाए तो गुलाबों की कीमत भी खो जाएगी। जुही भी चाहिए और चंपा भी चाहिए और कमल भी चाहिए और गुलाब भी चाहिए। यह जो विविधता है, यह ब्रह्म की अनेक आयामी अभिव्यक्ति है।

ब्रह्म कोई एक आयाम नहीं है, ब्रह्म कोई एक लकीर नहीं है--ऐसा सूर्य है जिससे अनंत किरणें फूटती हैं। और हर किरण अनूठी, अद्वितीय है! हर किरण का अपना रंग। हर किरण का अपना ढंग। हर किरण का अपना व्यक्तित्व, अपनी निजता, अपनी गंध। कोई किरण किसी दूसरी किरण का क्यों अनुसरण करे? ब्रह्मवेत्ता यह नहीं कहेगा। ब्रह्मवेत्ता यह कहे तो ब्रह्मवेत्ता नहीं है। ब्रह्मवेत्ता इंगित करेगा; उपदेश भी नहीं, सिर्फ इशारा। और स्मरण रखना, इशारा भी लोहे की जंजीरों जैसा नहीं, फूलों के हार जैसा--कोमल, तरल। यूं नहीं कि उसके ढांचे में तुम्हें बंधना पड़े, बल्कि यूं कि वह तुम्हारे अनुकूल ढल जाए।
इस भेद को साफ समझो। कपड़े तुम्हारे लिए हैं, तुम कपड़ों के लिए नहीं। यूं नहीं है कि कपड़े पहले से तैयार हैं और अब तुम्हें कपड़ों के साथ संयोजित होना है। अगर तुम थोड़े लंबे हो तो तुम्हारे हाथ-पैर छांटने होंगे। अगर तुम थोड़े छोटे हो तो तुम्हारे हाथ-पैर खींच कर बड़े करने होंगे। यूं ही तो आदमी मर रहा है; कपड़ों के लिए जी रहा है। और कपड़े न मालूम किन लोगों ने किनके लिए सिले थे, किनके लिए बने थे। उनकी लंबाई और थी, उनकी ऊंचाई और थी, उनके जीवन का सिलसिला और था, शैली और थी। जमाना बीत गया। गंगा का कितना पानी बह गया! मगर मूढ़ों की दुनिया अभी भी ठहरी है। किसी की दस हजार साल पहले, किसी की पांच हजार साल पहले, किसी की तीन हजार साल पहले। और मैं तुमसे कहता हूंः एक दिन पहले भी अगर तुम्हारी दुनिया ठहरी है तो तुम्हारे जीवन में संकट होगा। जीवन है अभी, जीवन है यहां, जीवन है इसी क्षण!
ब्रह्मवेत्ता कभी भी तुमसे नहीं कहेगा कि ये रहे सिद्धांत, इनका अनुसरण करो, इनसे चूके तो पाप होगा। ब्रह्मवेत्ता कहेगाः सिद्धांत तुम्हारे लिए हैं, तुम सिद्धांतों के लिए नहीं। ब्रह्मवेत्ता मनुष्य की महत्ता की घोषणा करेगा, उसकी स्वतंत्रता की घोषणा करेगा। उसकी निजता के ऊपर ब्रह्मवेत्ता किसी को भी नहीं रखता।
चंडीदास का प्रसिद्ध सूत्र हैः मानुष सत्य, मनुष्य का सत्य सबसे ऊपर है, उसके ऊपर कोई सत्य नहीं। मानुष सत्य साबार ऊपर, ताहार ऊपर नाहीं। यह ब्रह्मवेत्ता की उदघोषणा है। मनुष्य का सत्य सबसे ऊपर है, उसके ऊपर कोई सत्य नहीं।
तुम्हारी बलि बकरों की तरह दी गई है। पत्थरों के सामने तुम मारे गए हो, तुम बुरी तरह काटे गए हो, तुम्हारे अंग भंग किए गए हैं। तुम्हारे हाथ काट डाले गए हैं, तुम्हारी चेतना पंगु कर दी गई है, तुम्हारे पैर तोड़ दिए गए हैं और पैरों की जगह तुम्हें बैसाखियां दे दी गई हैं। और बैसाखियां देने वाले कहते हैं कि देखो हमारी करुणा, हमारी दया! पहले तुम्हें लंगड़ा बनाते हैं, फिर तुम्हें बैसाखी देते हैं। पहले तुम्हें अंधा बनाते हैं, फिर तुम्हें चश्मे पकड़ाते हैं। पहले तुम्हारे कान फोड़ देते हैं, फिर सुनने के यंत्र तुम्हें प्रदान करते हैं, बड़ा दान करते हैं।
आदमी न किसी शास्त्र के लिए है, न किसी सिद्धांत के लिए। सब शास्त्र आदमी के लिए हैं और सब सिद्धांत आदमी के लिए हैं। और जब जरूरत हो, सिद्धांतों को काट डालना, शास्त्रों को छांट डालना, लेकिन अपनी बलि किसी भी वेदी पर मत देना।
अगर ब्राह्मण का यह अर्थ हो, तब तो मैं राजी हो जाऊं। सत्यानंद ने इसीलिए ब्राह्मण शब्द को शायद छोड़ दिया। सत्यानंद भलीभांति जानते हैं कि मेरे हाथ में ब्राह्मण का क्या अर्थ होगा। और उनको तकलीफ यह हुई होगी कि मेरे ब्राह्मण के अर्थ के साथ फिर पूरे सूत्र का अर्थ नहीं बैठेगा। मैं ब्राह्मण को चुन लूंगा, पूरे सूत्र को आग लगा दूंगा। मुझे पूरे सूत्र से क्या लेना-देना? लेकिन तैत्तरीय उपनिषद की भी यह इच्छा नहीं, जो मेरी इच्छा है।
तैत्तरीय उपनिषद कहता हैः ब्राह्मणाः संदर्शिनो युक्ता आयुक्ता अलूसा धर्मकामाः स्युः, यथा ते तक्र वर्तेरन तथा तत्र वर्तेथाः। ब्राह्मण के पास जाओ, कब? "यदि कभी आपको अपने कर्म या आचरण के संबंध में संदेह उपस्थित हो।"

कर्म और आचरण के संबंध में संदेह कब उपस्थित होता है? जब कर्म और आचरण उधार होता है तभी संदेह उपस्थित होता है। अगर कर्म और आचरण तुम्हारी अपनी अनुभूति, अपनी प्रज्ञा, अपने बोध से जन्मा हो तो कैसा संदेह? असल में अगर तुम्हारे ध्यान से ही बहा हो तो संदेह असंभव है। क्योंकि संदेह को छोड़ कर ही तो ध्यान उत्पन्न होता है। फिर संदेह कहां? संदेह कैसा? जब स्वयं के प्रकाश में कोई चलता है तो कोई संदेह नहीं होता। मैंने तो इधर पच्चीस-तीस वर्षों में कोई संदेह नहीं जाना। खोजता हूं बहुत, एकाध मिल जाए, नहीं पाता हूं। सब तरफ से देख डाला, सब तरफ से छान डाला, कोई संदेह दिखाई नहीं पड़ता। यूं समझो कि जैसे तुम दीया जला कर अंधेरे को खोजने निकलो तो कैसे मिलेगा? दीया जला कर अंधेरे को खोजने निकलोगे तो दीया हाथ में होगा तो अंधेरा रहेगा कैसे? जिसके भीतर का दीया जला है, उसके भीतर के सब अंधेरे मिट जाते हैं। संदेह तो अंधेरा है।
सूत्र कहता हैः "यदि कभी आपको अपने कर्म या आचरण के संबंध में संदेह उपस्थित हो... ।"
इससे जाहिर है कि कर्म और आचरण उधार होगा, बासा होगा। किसी और को देख
कर तुम चलने लगे होओगे। किसी और की चाल चलोगे तो मुसीबत खड़ी होगी। किसी और का जीवन अगर तुमने आदर्श बना लिया तो तुम जगह-जगह संदेह से भरोगे। क्योंकि तुम्हारी निजता विद्रोह करेगी, बगावत करेगी कि यह तुम क्या कर रहे हो? क्यों तुम आत्महत्या कर रहे हो?
किसी और के पीछे चलना आत्महत्या है। किसी पहाड़ से गिर कर मर जाना केवल शरीर-हत्या है, आत्महत्या नहीं। उसके लिए आत्महत्या शब्द का उपयोग करना उचित नहीं। जहर खाकर मर जाना शरीर-हत्या है। गर्दन काट कर मर जाना शरीर-हत्या है, आत्महत्या नहीं। और शरीर के मरने से कोई मरता है? न हन्यते हन्यमाने शरीरे! कृष्ण कहते हैंः नहीं कोई मरता। शरीर मर जाए, इससे मृत्यु नहीं होती। लेकिन दूसरे का आचरण आधार बना लो तो यह आत्महत्या है। यूं तुम जीओगे, मगर उधार जीओगे। पैर तुम्हारे अपने न होंगे, किसी और के पैर से चलोगे। आंखें तुम्हारी अपनी न होंगी, किसी और की आंखों से देखोगे। कर्म तुम करोगे, लेकिन भीतर भरोसा नहीं हो सकता कि मैं ठीक कर रहा हूं या गलत; क्योंकि भीतर से वह कर्म आया नहीं, तुम्हारी श्रद्धा से उपजा नहीं, तुम्हारे बोध से जन्मा नहीं।
संदेह तो पैदा होगा तभी, जब तुमने ऊपर से ओढ़ लिया हो। राम-नाम की चदरिया तुमने ऊपर से ओढ़ ली हो, इससे क्या फर्क पड़ेगा? लाख बारीक अक्षरों में तुम राम-नाम लिख डालो अपनी पूरी चदरिया पर, इससे कुछ भी होने वाला नहीं है। इससे इतना ही होगाः "सत्य बोलो गत्य है, राम-नाम सत्य है।" राम-नाम की चदरिया ओढ़ ली, कफन ओढ़ लिया। राम-नाम भीतर जगना चाहिए। तुम्हारा अपना स्वर, अपना गीत होना चाहिए। फिर कोई संदेह नहीं।
सूत्र की शुरुआत ही गलत हैः "कर्म या आचरण के संबंध में संदेह उपस्थित हो... ।"
और संदेह जिस कारण उपस्थित हो रहा है वही समाधान बताया जा रहा है। जहां से बीमारी लाए हो वहीं भेजा जा रहा है वापस कि जाओ फिर किसी ब्राह्मण के पास बैठो। ब्राह्मण से मतलब ब्रह्मज्ञानी नहीं; ब्राह्मण से मतलब, जन्म से जो ब्राह्मण है, तोता। जो जन्म से ही शास्त्रों को घोल-घोल कर पी रहा है। शास्त्र उसकी स्मृति हैं, उसकी श्रुति हैं, लेकिन उसका बोध नहीं, उसका बुद्धत्व नहीं। सुना है उसने, कंठस्थ कर लिया है।
और पुरानी भाषाओं में यह खूबी थी, उन्हें कंठस्थ किया जा सकता था। क्योंकि पुरानी भाषाएं बड़ी संगीतपूर्ण थीं, बड़ी लयबद्ध थीं। संस्कृत, अरबी--इनको याद करना बहुत आसान, क्योंकि इनमें एक तुक है, इनमें एक लय है, एक छंद है। और ये सारी भाषाएं सूत्रबद्ध थीं। इसीलिए छोटे-छोटे सूत्र लिखे गए, ताकि कोई भी व्यक्ति इनको याद कर ले। और याददाश्त को बुद्धिमत्ता समझा जाता था। इसलिए सारा जोर इस बात पर था कि कंठस्थ करने की कला आ जाए तो तुम विद्वान हो जाओगे।
जब सिकंदर भारत से वापस लौट रहा था तो उसे खबर मिली कि एक ब्राह्मण के पास ऋग्वेद की मूल प्रति है। सिकंदर खुद तो बहुत उत्सुक नहीं था ऋग्वेद

में, लेकिन उसका गुरु था अरस्तू, और जब सिकंदर चला था एथेंस से तो अरस्तू ने कहा थाः कुछ चीजें मेरे लिए भी लेते आना। हो सके तो ऋग्वेद की एक प्रति ले आना; सुना है सबसे पुराना शास्त्र है हिंदुओं का। और बन सके, संभव हो सके, कोई संन्यासी राजी हो जाए तो किसी संन्यासी को ले आना।
दोनों चेष्टाएं उसने कीं और दोनों में असफल हुआ। और बहुत कुछ ले गया। सोना, चांदी, हीरे-जवाहरात, बड़ी लूट, हजारों हाथी और ऊंटों पर लाद कर यह सब ले जाया गया। लेकिन ये दो चीजें जो अरस्तू ने बुलाई थीं, नहीं ले जा सका। एक संन्यासी से कहा तो उसने तो हंस दिया। उसने कहा, "मैं अपना मालिक हूं।
मुझे कौन है तू आज्ञा देने वाला? मैं अपनी आज्ञा से जीता हूं। परमात्मा भी मुझे आज्ञा दे तो मैं सुनने वाला नहीं हूं। मैं अपने ढंग, अपनी मौज का आदमी हूं। यह बेहूदी बात वापस ले ले!"
सिकंदर तो आगबबूला हो गया। इस तरह की भाषा कोई उससे बोला नहीं था। उसने तलवार खींच ली। उसने कहा, "अपने शब्द वापस लो, अन्यथा अभी गर्दन काट कर गिरा दूंगा।"
वह संन्यासी हंसने लगा। सिकंदर के इतिहास लिखने वाले लोगों ने उसका नाम दंदामिस लिखा है; वह यूनानी रूप मालूम होता है। दंदामिस भारतीय नाम नहीं मालूम होता। हो सकता है दंडी साधु रहा हो, जो डंडा रखते हैं। और यह आदमी चाहे डंडा न भी रखता हो, मगर डंडा रखता था। रहा होगा कबीर जैसा आदमी। सिकंदर से ऐसी भाषा बोले, कबीर जैसा रहा होगा। जैसा कबीर कहते हैंः लिए लुकाठी! कबीरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ। लट्ठ लिए हाथ खड़ा है कबीर और बाजार में खड़ा है कबीर। घर जो बारै आपना चले हमारे साथ! है किसी की हिम्मत, है कोई माई का लाल कि जला दे अपना घर, राख कर दे अपना घर और हमारे साथ हो ले! तो डंडा चाहे हाथ में न भी रहा होगा, मगर था डंडे वाला आदमी। सिकंदर से उसने कहा, "चूक मत! मैं तो अपने शब्द वापस लूंगा नहीं। अरे जो दे दिया, क्या वापस लेना! दिया दान कहीं वापस लिया जाता है, यह क्या बात हुई? रही गर्दन काटने की बात, सो काट ले, अभी काट ले! जहां तक मेरा सवाल है, जमाने हुए तब की काट चुका हूं। जिस दिन जाना उसी दिन गर्दन कट गई। जिस दिन अपने को पहचाना उसी दिन जान लिया कि शरीर मुर्दा है। अब मुर्दे को और क्या मारेगा? मार ले, तुझे मारने का मजा मिल जाएगा और हमें भी देखने का मजा आ जाएगा। तू देखेगा गर्दन कटती हुई, जमीन पर गिरती हुई; हम भी देखेंगे। तू बाहर से देखेगा, हम भीतर से देखेंगे। देखने वाला जब मौजूद है तो गर्दन के कटने से कुछ भी बनता- बिगड़ता नहीं।"
सिकंदरझेंपा, शर्माया, तलवार वापस म्यान में रखने लगा।
उस फकीर ने कहा, "अब क्या तलवार वापस रखता है? अरे निकली तलवार वापस रखी जाती है? मैं बोले शब्द वापस नहीं लेता, तू निकली तलवार वापस रखता है? शर्म खा! संकोच कर!"
मगर ऐसे आदमी को कैसे मारना! ऐसे आदमी को मारा नहीं जा सका। सिकंदर ने कहा, "मुझे क्षमा करें। मुझे संन्यासियों से बात करने का कोई सलीका नहीं आता। आप पहले संन्यासी हैं। मैं सैनिक की भाषा बोलता हूं, सैनिकों से मिलता-जुलता हूं, मैं तो तलवार की भाषा समझता हूं। सम्राटों से मिला हूं, गर्दनें काटी हैं, अपनी कटवाने को तैयार रहा हूं। मैं वही जानता हूं। मुझे क्षमा कर दें। मगर तुम जैसा मैंने आदमी नहीं देखा। ठीक ही कहा था अरस्तू ने कि हो सके... क्योंकि यह बात असंभव है कि कोई संन्यासी आने को राजी हो। जो आने को राजी हो वह संन्यासी नहीं होगा। उसने ठीक कहा था। मुझे बिना संन्यासी ही जाना पड़ेगा।"
तब उसने ऋग्वेद की तलाश शुरू की। एक ब्राह्मण के घर, खबर मिल गई, उसने
घर घेर लिया कि ब्राह्मण कहीं भाग न जाए। ब्राह्मण से कहा। अब तुम फर्क देखो एक संन्यासी का और ब्राह्मण का! ब्राह्मण ने कहा, "दे दूंगा, जरूर दे दूंगा।" घबड़ा गया। ये नंगी तलवारें घर को घेरे हुए। यूं जैसे लपटें लपलपाती हुई। ब्राह्मण तो घुटनों पर गिर पड़ा। उसने कहा कि जरूर दे दूंगा, लेकिन नियम है, व्यवस्था है कि रात भर देने के पहले मुझे पूजा करनी होगी; विदाई कर रहा हूं। और सुबह सूरज के ऊगने के साथ आपको किताब भेंट कर दूंगा।

सिकंदर को बात समझ में आई कि कोई रिवाज है, पूजा है, पाठ है, कर लेने दो। अभी नहीं तो सुबह; भाग कर जाएगा कहां, सब चारों तरफ तलवारें लगी हुई हैं!
रात उसने अपने बेटे को पास बिठाया, आग जलाई और एक-एक पन्ना ऋग्वेद का पढ़ता गया और बेटे से कहा, "तू सुन ले, ठीक से सुन ले, याद रख ले।" और जैसे ही पूरा पन्ना पढ़ लेता, उसको आग में डाल देता। सुबह होते-होते जब सिकंदर घर में प्रविष्ट हुआ, आखिरी पन्ना आग में डाला जा चुका था। सिकंदर हक्का- बक्का रह गया। उस ब्राह्मण से कहा, यह तुमने क्या किया? उसने कहा कि तुम्हें जो मैंने वायदा किया था, उससे मुकरूंगा नहीं। यह मेरे बेटे को तुम ले जाओ, इसको पूरा ऋग्वेद कंठस्थ है।
सिकंदर को भरोसा न आया कि रात भर में ऋग्वेद जैसी बड़ी किताब एक ही बार सुने जाने पर कैसे कंठस्थ हो सकती है! उसने और ब्राह्मणों को बुलवाया, जांच करवाई और पाया कि उस लड़के को सब कंठस्थ है।
संस्कृत, अरबी, लैटिन, ग्रीक, ये सारी पुरानी भाषाएं कंठस्थ करने की कला पर बड़ा जोर देती थीं। इनका आग्रह यही था--बोध नहीं, स्मृति। जो जान ले, उसका मतलब यह नहीं था कि उसने पहचान लिया; उसका मतलब यह था कि उसे शास्त्र याद हैं और वह यंत्रवत उन्हें दोहरा देगा। और आज तो वैज्ञानिक कहते हैं कि एक-एक मस्तिष्क की स्मरण करने की क्षमता असीम है। एक मस्तिष्क सारी दुनिया के जितने पुस्तकालय हैं उन सबको कंठस्थ कर सकता है, इतनी एक मस्तिष्क के भीतर संभावना छिपी है। अभी बड़े-बड़े कंप्यूटर ईजाद किए गए हैं, लेकिन कोई भी कंप्यूटर मनुष्य के मस्तिष्क का मुकाबला नहीं कर सकता। करेगा भी कैसे, क्योंकि आखिर कंप्यूटर मनुष्य के मस्तिष्क की ईजाद है। कितना ही बड़ा कंप्यूटर बना लिया जाए, वह बनाएगा तो मनुष्य का मस्तिष्क। और बनाई गई चीज बनाए जाने वाले से कभी बड़ी नहीं हो सकती है।
ये तोते थे। अब इन्हीं तोतों के कारण तो कर्म और आचरण संदेह से भरा हुआ है। किन्हीं और तोतों ने, मगर इन्हीं जैसे तोतों ने, किन्हीं और पींजड़ों में बंद, मगर इन्हीं जैसे पींजड़ों में बंद, तोतों ने आचरण दिया होगा, सत्यानंद, तभी तो संदेह पैदा हो रहा है। और अब फिर जिन्होंने रोग दिया है उन्हीं के पास जाने की सलाह तैत्तरीय उपनिषद दे रहा है। वह कहता है कि जाओ, फिर किसी विचारशील ब्राह्मण के पास।
अब ब्राह्मण तो वह है जो विचारमुक्त हुआ हो। ब्राह्मण विचारशील नहीं होता। मेरी भाषा का ब्राह्मण तो विचारमुक्त होकर ही ब्रह्म को जानता है; निर्विचार होकर ही ब्रह्म को जानता है। पतंजलि मुझसे राजी होंगे, महावीर मुझसे राजी होंगे, बुद्ध मुझसे राजी होंगे। जिन्होंने भी जाना है वे मुझसे राजी होंगे कि विचार के पार जाकर ही--विचार तो उपद्रव है, विक्षिप्तता है--निर्विचार में ही, उस शून्य में ही तो पूर्ण का अवतरण होता है। जब तक तुम शून्य नहीं हो तब तक पूर्ण को झेलने की क्षमता भी तुम्हारी नहीं। शून्य ही झेल सकता है पूर्ण को, क्योंकि पूर्ण है असीम और शून्य भी है असीम। असीम ही असीम को अपने भीतर आवास दे सकता है। असीम ही अतिथि को आतिथ्य दे सकता है। असीम ही मेजबान बन सकता है उस परम मेहमान का। शून्य हमारी क्षमता है और पूर्ण हमारी उपलब्धि।
लेकिन यह सूत्र कहता हैः "किसी विचारशील ब्राह्मण... ।"
अब विचार के कचरे से जो भरा है वह किन्हीं और तोतों को दोहरा रहा है।
हो सकता है तुमसे ज्यादा कुशल तोता हो, तुमसे ज्यादा ज्ञानी तोता हो, तुमसे ज्यादा शास्त्र घोंट-घोंट कर पी गया हो, तो जरूर तुम्हें कुछ समाधान पकड़ाएगा। मगर वे समाधान ही तुम्हारी सारी समस्याओं के कारण हैं। फिर नये संदेह उठेंगे। संदेह उठते ही रहेंगे, जब तक तुम अपने भीतर निर्विचार के आकाश का द्वार नहीं खोल लेते हो। निर्विचार के आकाश का द्वार खुला कि श्रद्धा का कमल खिला। और श्रद्धा का कमल जब तक न खिले तब तक संदेह पैदा होंगे ही होंगे। ये कांटे होंगे ही होंगे। वही ऊर्जा जो फूल बननी है, दूसरों के पीछे चल-चल कर कांटे बन जाती है। और जब अपने भीतर मुड़ती है तो वही जो जहर थी, अमृत बन जाती है। इस कीमिया को जो दे दे वही सदगुरु है। जो कांटों को फूलों में बदलने की कला सिखा दे, जो मन को अ-मन में बदलने का

विज्ञान दे दे, जो इशारे कर दे कि विचार से कैसे निर्विचार हुआ जा सकता है, जो ध्यान की तरफ तुम्हारे जीवन की दिशा को मोड़ दे--वही सदगुरु है, वही ब्राह्मण है।
यह तो ब्राह्मण की परिभाषा न हुई--विचारशील, तपस्वी।
तपस्या का क्या अर्थ होता है? इसका अर्थ होता हैः अपने को सताना, अपने
को दबाना, अपने को मारना। यह आत्महिंसा है। ब्रह्मज्ञानी क्यों आत्महिंसा करेगा? जब ब्रह्मज्ञानी परहिंसा नहीं करता तो आत्महिंसा कैसे करेगा? जो दूसरे को भी नहीं मारता वह अपने को कैसे मारेगा? वह क्यों अपने को सताएगा?
और एक बात ख्याल रखना, जो आदमी अपने को सताने में कुशल हो जाता है। वह दूसरों को सताने में भी अनिवार्यरूपेण कुशल हो जाता है। जो अपने को सता रहा है, वह उनकी निंदा करेगा जो अपने को नहीं सता रहे हैं। वह उनको अपराध-भाव से भरेगा कि सताओ अपने को, बिना सताए कोई कभी पहुंचा है? मुझे देखो कितना सता रहा हूं! फिर भी अभी कितने दूर हूं! तुम तो बहुत दूर हो, तुमने तो अभी अपने को सताना सीखा ही नहीं।
उसको वे तपश्चर्या कहते हैं। नंगे खड़े रहो सर्दी में।
अगर परमात्मा को तुम्हें नंगा खड़े रहने के लिए बनाना था तो उसने तुम्हारे सारे शरीर पर बाल दिए होते, जैसे और जानवरों को दिए हैं। यह तो सीधा सा गणित है। तुमने देखा कि जब सर्दी आती है तो भेड़ों के बाल बढ़ जाते हैं। स्वभावतः, क्योंकि सर्दी को सहने का कोई और तो उपाय नहीं भेड़ के पास। आदमी के शरीर पर पूरे शरीर पर बाल नहीं हैं, कुछ हिस्सों पर बाल हैं। और वे वे ही हिस्से हैं जो बहुत संवेदनशील हैं। उनको प्रकृति ने बाल से ढंक दिया है। जैसे जिन अंगों को बचपन से ही बालों से ढंकना जरूरी है, क्योंकि उनकी संवेदनशीलता इतनी है कि अगर वे ढंके न हों तो खतरा है कि उन पर चोट पहुंच जाए, उनको नुकसान हो जाए। संवेदनशील अंग केवल बालों से ढंके हैं, बाकी सारा शरीर तो बालों से मुक्त है; क्योंकि यह भरोसा है कि आदमी कपड़े खोज लेगा, आदमी अपने को ढांकने का ढंग खोज लेगा। जानवर नहीं खोज सकेंगे, उनको नंगा ही रहना है। मगर कुछ पागल हैं जो सिखा रहे हैं कि नग्न खड़े हो जाओ सर्दी में, तो ज्ञान को उपलब्ध हो जाओगे।
पशु हो जाओगे, परमात्मा नहीं। और तुम सर्दी में खड़े होकर देखो, थोड़ी- बहुत बुद्धि होगी वह भी खो जाएगी, वह भी सिकुड़ जाएगी। खून ही जमने लगेगा तो बुद्धि भी जम जाएगी, बर्फ हो जाएगी। और तुम कठोर हो जाओगे और तुम्हारी संवेदनशीलता मर जाएगी। और जिसकी संवेदनशीलता मर गई उसके भीतर की मनुष्यता मर गई। मनुष्य की खूबी ही उसकी संवेदनशीलता है, उसकी ग्रहणशीलता है। मनुष्य के पास सबसे ज्यादा संवेदनशील शरीर है, सबसे ज्यादा संवेदनशील इंद्रियां हैं। उन्हीं इंद्रियों के कारण तो उसकी महिमा है।
मगर यह सारी तपश्चर्या इंद्रियों का दमन है, इंद्रियों को मारना है, खाल को मोटी करना है। और तुम जानते ही हो कि जिसकी खाल मोटी होती है, उसका मतलब क्या होता है। कोई उल्लू का पट्ठा, जिनकी चमड़ी इतनी मोटी है कि तुम लाख उपाय करो, कुछ उनके भीतर जा नहीं सकता। सुनते हैं, मगर सुनते नहीं। देखते हैं, मगर देखते नहीं। उनकी खोपड़ी में कुछ भी डालो, कुछ का कुछ पहुंचता है, चमड़ी इतनी मोटी है। जाते-जाते ही बातें बिगड़ जाती हैं, कुछ अटक जाता है, कुछ इधर ठहरा, कुछ उधर ठहरा। बात हजार टुकड़े हो जाती है। उन तक एकाध टुकड़ा पहुंचता है, उस टुकड़े का फिर वे मतलब निकालते हैं। मोटी चमड़ी, वे मतलब भी क्या निकालेंगे! मतलब की बात भी होगी, अर्थ की बात भी होगी तो अनर्थ कर लेंगे।
लेकिन इन मोटी चमड़ियों का तुम समादर कर रहे हो। इनको तुम तपस्वी कहते हो। मैं तुम्हारे तपस्वियों को भलीभांति जानता हूं, हर तरह से उन्हें देखा और परखा है। एक बात जरूर पाई कि उनमें बुद्धि बिल्कुल नहीं। बुद्धि हो ही नहीं सकती। बुद्धि होती तो ऐसा बुद्धूपन का काम नहीं करते। कुछ हैं जो धूप में खड़े हैं। और धूप से ही उनका मन नहीं मानता तो अंगीठी जलाए हुए हैं चारों तरफ, धूनी रमाए हुए हैं, जैसे सूरज की धूप काफी नहीं! धुआं भी चाहिए, धूनी भी चाहिए, चारों तरफ लकड़ियां जलती रहें, तब उनको चैन मिलेगा।

स्वभावतः जो इस तरह अपने साथ दुर्व्यवहार करेगा, उसकी संवेदनशीलता तो समाप्त सुनिश्चित हो जाने वाली है। वह तो रह जाएगा रूखा-सूखा, रसहीन। और परमात्मा हैः रसो वै सः। वह है रसरूप। और ये रसहीन लोग, ये अरसिक लोग, जो रस को सुखा डाले हैं, जिनके भीतर कुछ भी हरा-भरा नहीं, फूल तो दूर पत्ते भी नहीं ऊगते, जो ठूंठ की तरह खड़े रह गए हैं, मरे हुए वृक्ष--इनको तुम तपस्वी कहते हो।
कोई ब्रह्मज्ञानी तपस्वी नहीं होता। मेरे देखे में तो ब्रह्मज्ञानी
ही सिर्फ भोगी होता है। वह परमभोग में जीता है। वह परमात्मा को भोग रहा है, इससे बड़ा और क्या भोग हो सकता है?
और ब्राह्मण की परिभाषा को आगे खींचा गयाः "विचारशील, तपस्वी, कर्तव्यपरायण।"
कर्तव्य शब्द ही गंदा है। प्रेम से जीना समझ में आता है, कर्तव्य से जीना समझ में नहीं आता। यह तुम्हारी पत्नी है, इसलिए तुम्हारा कर्तव्य है कि इसको प्रेम करो। अब जब कोई कर्तव्य से प्रेम करेगा तो तुम सोच ही सकते हो कि प्रेम क्या खाक होगा! दिखावा होगा, वंचना होगी, धोखा होगा। ऊपर-ऊपर प्रेम होगा, भीतर-भीतर घृणा होगी। और घृणा फूट-फूट कर निकलेगी। कितना दबाओगे? एक सीमा है दबाने की। कहां तक रोकोगे? एक तरफ से रोकोगे, दूसरी तरफ से बहेगी। वह घृणा तुम्हारे भीतर जो तुम इकट्ठी कर रहे हो--कर्तव्य के नाम पर। और कर्तव्य सिखाया जा रहा है, हरेक को कर्तव्य सिखाया जा रहा है। प्रेम की तो बात ही मत करना। इस सूत्र में कहीं प्रेम नहीं आता। ब्रह्मज्ञानी प्रेम से भरा होगा, लबालब होगा। यूं लबालब होगा कि प्रेम उसके ऊपर से बहता होगा। कर्तव्य नहीं होता ब्रह्मज्ञानी के जीवन में, प्रेम होता है। वह जो करता है प्रेम से करता है। जो उसके प्रेम में नहीं आता, नहीं करता। उसके लिए प्रेम ही एकमात्र कसौटी है। जो प्रेम पर खरा उतरता है वही सोना है और जो प्रेम पर खरा नहीं उतरता वह खोटा है। कर्तव्य सामाजिक व्यवस्था है। तुम्हें सिखाया जाता हैः कर्तव्य का पालन करो। और जो कर्तव्य का पालन करेगा उसको आदर दिया जाता है, सम्मान दिया जाता है, पुरस्कार दिए जाते हैं। यह प्रलोभन है। यह समाज की रिश्वत है कि तुम पद्म-विभूषण होओगे, कि भारत-रत्न बनोगे, नोबल पुरस्कार मिलेगा, कर्तव्य पूरा करो। सब कुछ स्वाहा कर दो कर्तव्य पर। अपनी बलि दे डालो कर्तव्य पर। देश के लिए बलि दो, परिवार के लिए बलि दो, धर्म के लिए बलि दो, जाति के लिए बलि दो। बस तुमसे अपेक्षा यही है कि बलि के बकरे हो जाओ! इस ईद में मरो कि उस ईद में मरो, कोई फिकर नहीं, मरो, मगर ईद में मरो! किसी न किसी ईद में कटो। किसी न किसी जिहाद में, धर्मयुद्ध में बस गर्दन तुम्हारी गिरे। और अगर धर्मयुद्ध में तुम्हारी गर्दन गिरे तो तुम्हारा बैकुंठ निश्चित है, बहिश्त निश्चित है। मुसलमान कहते हैंः जो जिहाद में मरेगा, जो धर्मयुद्ध में मरेगा, वह सीधा स्वर्ग जाता है। और वही दूसरे धर्म भी कहते हैं कि धर्म के लिए मरना स्वर्ग जाने का सुगमतम उपाय है। इधर मरे नहीं कि उधर बैकुंठ के द्वार पर शहनाई बजी नहीं। और मर रहे हो तुम मार कर। मर रहे हो मारने में। उस हिंसा का कोई हिसाब नहीं। जो मुसलमान मर रहा है जिहाद में, वह मर किसलिए रहा है? क्योंकि मारने चला है। अनेकों को मारेगा तब मरेगा। वह अनेकों को मारा, उसका कोई हिसाब नहीं। वह जो अनेक मकान जला दिए, लोग जिंदा जला दिए, उसका कोई हिसाब नहीं।
ईसाइयों ने जिंदा आदमी जलाए--मगर इस आशा में कि यह धर्म का कार्य हो रहा है। और यही हिंदुओं ने किया है। और यही सारे धर्म छोटे-मोटे भेदों से करते रहे हैं। जो जिनकी संख्या छोटी है, नहीं कर सके हैं, तो वे दिल में छिपाए बैठे हैं आग। संख्या छोटी है, बस इसलिए मरने-मारने की भाषा नहीं बोल सकते, तो सहिष्णुता की बातें बोलते हैं, उदारता की बातें बोलते हैं। मगर भीतर उनके अनुदारता भरी हुई है। वह उनकी अनुदारता तलवार में नहीं निकल सकती, तो तर्कों में निकलती है, तर्क की तलवार में निकलती है।
जैसे जैनों ने किसी को मारा नहीं, मार सकते नहीं थे। संभवतः सबसे पुराना धर्म है और संख्या कुल पैंतीस लाख! दस हजार साल में कुल संख्या पैंतीस लाख। दस हजार साल पहले अगर एक दंपति भी, एक जोड़ा भी जैन हुआ होता तो

काफी था। दस हजार साल में बच्चों के बच्चे, उल्लू के पट्ठे, पट्ठों के पट्ठे पैंतीस लाख हो जाते। पैंतीस लाख कोई संख्या है? और जिस ढंग से भारत में आदमी बढ़ते हैं--कीड़े-मकोड़ों की तरह! उन्नीस सौ सैंतालीस में भारत आजाद हुआ तो आबादी थी पैंतीस करोड़। सिर्फ तीस-तैंतीस साल में आबादी दुगनी हो गई, आज आबादी है सत्तर करोड़। क्या उत्पादन है! क्या सृजनशीलता है! सृष्टि करना कोई अगर जानता है तो बस भारतीय ही जानते हैं।
दस हजार साल में पैंतीस लाख जैन! अब बेचारे उदारता की बात न करें तो क्या करें? जैन सारे देश में सर्व-धर्म-समन्वय-सम्मेलन बुलाते हैं। बुलाना पड़ता है। घबड़ाए हुए हैं, डरे हुए हैं। मगर भीतर आग जलती है। वह आग निकलती है उनकी किताबों में। उनकी किताबों में जितना जहर है उतना किसी की किताबों में नहीं। उनकी किताबों में सिर्फ तर्क है। तलवार से बचे हैं तो तर्क की तलवार उठा ली है। तो काटा-पीट में लगे हुए हैंः सब गलत है! हालांकि उनकी किताबें कोई पढ़ता नहीं सिवाय उनके, नहीं तो उनकी किताबों में जहर भरा हुआ है। कहीं न कहीं से दबी हुई मवाद निकलेगी।
कर्तव्यपरायण होने से कुछ भी नहीं हो सकता।
और सूत्र कहता हैः "शांत स्वभाव... ।"
विचारशील व्यक्ति शांत कैसे हो सकता है? जन्मना ब्राह्मण कैसे वस्तुतः शांत हो सकता है? हां, शांत होने का प्रदर्शन कर सकता है, अभिनय कर सकता है। और अभिनय ही तुम्हें दिखाई पड़ेगा। जरा कुरेदो उसे भीतर और तुम अशांति पाओगे, गहन अशांति पाओगे। जरा सा कुरेद दो और क्रोध भभक उठेगा। बिना कुरेदे तुम्हें पता नहीं चलेगा। ऊपर-ऊपर से देखा तो चंदन-वंदन लगाए, चुटैया बांधे, जनेऊ पहने--मुख में राम बगल में छुरी--मुंह को ही देखा तो छुरी तुम्हें दिखाई न पड़ेगी।
यही ब्राह्मण इस देश में, इस देश की बड़ी से बड़ी संख्या, शूद्रों को सता रहे हैं सदियों से। ये कैसे शांत लोग हैं? और अभी भी इनका दिल नहीं भरा। आज भी वही उपद्रव जारी है। अभी सारे देश में आग फैलती जाती है। और गुजरात से क्यों शुरू होती है यह आग? पहले भी गुजरात से शुरू हुई थी। तब ये जनता के बुद्धू सिर पर आ गए थे। अब फिर गुजरात से शुरू हुई है। गुजरात से शुरू होने का कारण साफ है। यह महात्मा गांधी के शिक्षण का परिणाम है, यह उनकी शिक्षा का परिणाम है। वे दमन सिखा गए हैं। और सबसे ज्यादा गुजरात ने उनको माना है। क्योंकि गुजरात के अहंकार को बड़ी तृप्ति मिली कि गुजरात का बेटा और पूरे भारत का बाप हो गया! अब और क्या चाहिए? गुजराती का दिल बहुत खुश हुआ। उसने जल्दी से खादी पहन ली। मगर खादी के भीतर तो वही आदमी है जो पहले था। महात्मा गांधी के भीतर खुद वही आदमी था जो पहले था। उसमें भी कोई फर्क नहीं था। महात्मा गांधी बहुत खिलाफ थे इस बात के कि शूद्र हिंदू धर्म को छोड़ें। उन्होंने इसके लिए उपवास किया था--आजन्म, आजीवन। मर जाने की धमकी दी थी--आमरण अनशन--कि शूद्र को अलग मताधिकार नहीं होना चाहिए।
क्यों? पांच हजार सालों में इतना सताया है उसको। कम से कम उसे अब कुछ
तो सत्ता दो, कुछ तो सम्मान दो। उसके अलग मताधिकार से घबड़ाहट क्या थी? घबड़ाहट यह थी कि शूद्रों की संख्या बड़ी है। और शूद्र ब्राह्मणों को पछाड़ देंगे, अगर उन्हें मत का अधिकार पृथक मिल जाए। तो मत का अधिकार रुकवाया गांधी ने।
आमरण अनशन की धमकी हिंसा है, अहिंसा नहीं। और एक आदमी के मरने से या न मरने से कोई फर्क नहीं पड़ता। यूं ही मरना है। लेकिन दबाव डाला गया शूद्रों पर सब तरह का कि तुम पर यह लांछन लगेगा कि महात्मा गांधी को मरवा डाला। यूं ही तुम लांछित हो, ऐसे ही तुम अछूत हो; ऐसे ही तुम्हारी छाया भी छू जाए किसी को तो पाप हो जाता है; तुम्हें और लांछन अपने सिर लेने की झंझट नहीं लेनी चाहिए। बहुत दबाव डाला गया। दबाव डाल कर गांधी का अनशन तुड़वाया गया और शूद्रों का मताधिकार खो गया।
अब गुजरात में उपद्रव शुरू हुआ है कि शूद्रों को जो भी आरक्षित स्थान मिलते हैं विश्वविद्यालयों में, मेडिकल कालेजों में, इंजीनियरिंग कालेजों में, वे नहीं मिलने चाहिए। क्यों?

"क्योंकि स्वतंत्रता में और लोकतंत्र में सबको समान अधिकार होना चाहिए।"
मगर शूद्रों को तुमने पांच हजार साल में इतना दबाया है कि उनके बेचारों के समान अधिकार का सवाल ही कहां उठता है?
"सबको गुण के अनुसार स्थान मिलना चाहिए।"
लेकिन पांच हजार साल से जिनको किताबें भी नहीं छूने दी गईं, जिनको किसी तरह की शिक्षा नहीं मिली, वे ब्राह्मणों से, क्षत्रियों से, वैश्यों से कैसे टक्कर ले सकेंगे? उनके बच्चे तो पिट जाएंगे। उनके बच्चे तो कहीं भी नहीं टिक सकते। उनके बच्चों को तो विशेष आरक्षण मिलना ही चाहिए। और यह कोई दस-बीस वर्ष तक में मामला हल होने वाला नहीं है। पांच हजार, दस हजार साल जिनको सताया गया है, तो कम से कम सौ, दो सौ साल तो निश्चित ही उनको विशेष आरक्षण मिलना चाहिए, ताकि इस योग्य हो जाएं कि वे खुद सीधा मुकाबला कर सकें। जिस दिन इस योग्य हो जाएंगे, उस दिन आरक्षण अपने आप बंद हो जाएगा। लेकिन आरक्षण उनको नहीं मिलना चाहिए, इसके पीछे चालबाजी है, शड्यंत्र है। शड्यंत्र वही है, क्योंकि सबको जाहिर है। जिनके पैर दस हजार साल तक तुमने बांध रखे और अब दस हजार साल के बाद तुमने उनकी पैर की जंजीर तो अलग कर ली, तुम कहते हो, सबको समान अधिकार है, इसलिए तुम भी दौड़ो दौड़ में। लेकिन जो लोग दस हजार साल से दौड़ते रहे हैं, धावक हैं, उनके साथ जिनके पैर दस हजार साल तक बंधे रहे हैं इनको दौड़ाओगे, तो सिर्फ फजीहत होगी इनकी। ये दो-चार कदम भी न चल पाएंगे और गिर जाएंगे। ये कैसे जीत पाएंगे? ये प्रतिस्पर्धा में कैसे खड़े हो पाएंगे? थोड़ी शर्म भी नहीं है इन लोगों को जो आरक्षण-विरोधी आंदोलन चला रहे हैं।
और यह आग फैलती जा रही है; अब राजस्थान में पहुंच गई; अब मध्यप्रदेश में पहुंचेगी। और एक दफे बिहार में पहुंच गई तो बिहार तो बुद्धुओं का अड्डा है। बस गुजरात के उल्लू और बिहार के बुद्धू अगर मिल जाएं, तो पर्याप्त। इस देश की बरबादी के लिए फिर कोई और चीज की जरूरत नहीं है। और ज्यादा देर नहीं लगेगी। जो बिहार के बुद्धू हैं वे तो हर मौके का उपयोग करना जानते हैं। जरा बुद्धू हैं इसलिए देर लगती है उनको। गुजरात से उन तक खबर पहुंचने में थोड़ा समय लगता है, मगर पहुंच जाएगी। और एक दफा उनके हाथ में मशाल आ गई तो फिर बहुत मुश्किल है। फिर उपद्रव भारी हो जाने वाला है। और यह आग फैलने वाली है, यह बचने वाली नहीं है। और इस सब आग के पीछे ब्राह्मण है। उसको डर पैदा हो गया है। ब्राह्मण ने बड़ी ऊंची तरकीब की थी। मनुस्मृति हिंदू धर्म का मूल आधार-ग्रंथ है, जिससे हिंदू की नीति निर्धारित होती है। वह हिंदुओं का संविधान है। मनुस्मृति कहती हैः "स्त्रियों को कोई अधिकार नहीं अध्ययन-मनन का।" पचास प्रतिशत संख्या को काट दिया। "शूद्रों को कोई अधिकार नहीं अध्ययन-मनन का।" और जो बचे थे, उनमें से पचास प्रतिशत काट दिए। अब अधिकार रह गया सिर्फ ब्राह्मण का, क्षत्रिय का, वैश्य का। वैश्य का अधिकार इतना ही है कि वह व्यवसाय के योग्य शिक्षा प्राप्त करे। क्षत्रिय का अधिकार इतना ही है कि वह युद्ध के लड़ने योग्य शिक्षा प्राप्त करे।
यही कृष्ण समझा रहे थे अर्जुन को कि तू क्षत्रिय है, तेरा धर्म लड़ना है। संन्यास तेरा धर्म नहीं है। यह ध्यान और समाधि लगाना तेरा धर्म नहीं है। तू अपना कर्तव्य निभा। ब्राह्मणों जैसी बातें न कर। क्षत्रिय है, तू लड़! नहीं तेरी अवमानना होगी, अपमान होगा।
क्षत्रिय को भड़काने के लिए "अपमान" शब्द एकदम जरूरी है। बस अपमान शब्द ले आओ कि क्षत्रिय भड़का।
मैं मनाली जा रहा था। तो बड़ी कार, और बीच में वर्षा हो गई। तो जो सरदार मेरी कार को चला रहा था, उसने बीच रास्ते में गाड़ी रोक दी। क्योंकि थोड़ी फिसलन थी, रास्ता चंडीगढ़ और मनाली के बीच बहुत संकरा है और खतरनाक है। और गाड़ी बड़ी थी। और बहुत सम्हल कर चलना जरूरी था। और जगह-जगह कीचड़ थी। और गाड़ी फिसलती थी, चढ़ाई भी थी। उसने कहा, "मैं आगे नहीं जा सकता।" वह तो नीचे उतर कर बैठ गया।
मैंने उससे कहा, "यूं कर, तू पीछे बैठ जा, गाड़ी मैं चलाता हूं।"

उसने कहा कि मैं जिंदगी भर पहाड़ियों में गाड़ी चलाता रहा और मुझे खतरा
है कि गाड़ी गिर जाएगी और आपने शायद जिंदगी में कभी ऐसे खतरनाक रास्ते पर गाड़ी न चलाई होगी। मैं इस गाड़ी में नहीं बैठ सकता। आपको चलाना हो तो आप चलाएं।
मैंने कहा, "मुझे रास्ता मालूम नहीं, तू सिर्फ रास्ता बता।"
मगर वह इसके लिए भी राजी नहीं। वह कहे कि मैं अपनी जान क्यों खतरे में डालूं? मैं तो यहीं से वापस लौटूंगा।
बड़ी मुश्किल खड़ी हो गई। तभी पंजाब के आई.जी. थे, वे भी मनाली शिविर में भाग लेने आ रहे थे, सरदार थे, उनकी जीप आकर रुकी। मैंने उनसे कहा कि अब आप ही कुछ करो। तरबूज खरबूज की भाषा समझते हैं! यह मेरी भाषा समझता नहीं। अब दोनों सरदार निपट लो।
और तत्क्षण बात बन गई। आई.जी. सरदार ने कहा, "अरे शर्म नहीं आती खालसा
का आदमी होकर? वाहे गुरु जी का खालसा, वाहे गुरु जी की फतह! उठ!"
और वह सरदार एकदम उठ आया, एकदम गाड़ी चलाने लगा। फिर उसने रास्ते भर, खतरनाक और आगे रास्ता खतरनाक था, फिर उसने कुछ नहीं कहा। जहां जरा मैं उसको ढीला-ढाला देखूं, कहूंः वाहे गुरु जी का खालसा! और वह एकदम फिर सम्हल जाए और गाड़ी चलाने लगे।
वही कृष्ण कर रहे हैं अर्जुन के साथः "अरे तू क्षत्रिय है! क्या अपमान करवाएगा? बेइज्जती करवाएगा? लड़ना, मरना और मारना तेरा धर्म है। तू ब्राह्मण की भाषा बोल रहा है? कि संन्यास ले लूंगा, जंगल में रहूंगा, मुझे नहीं चाहिए राजपाट! यह धन का मैं क्या करूंगा? अरे मैं तो शांति से बैठूंगा!"
तो क्षत्रिय को लड़ना, बस उतनी कला सीखनी है। तब रह गया ज्ञान, ध्यान, जीवन का जो चरम अर्थ है, जीवन की जो चरम सुगंध है--उसका अधिकारी रह गया केवल ब्राह्मण।
दस हजार सालों से ब्राह्मण भारत की छाती पर बैठा है, अब भी यह उतरना नहीं चाहता। यही इसके पीछे है--इन सारे उपद्रवों के पीछे है।
शांत स्वभाव और ब्राह्मण? तो ये दुर्वासा जैसे ऋषि किसने पैदा किए?
जो जरा सी बात में अभिशाप दे डालें। और ऐसे अभिशाप कि इस जन्म में नहीं, अगले जन्मों तक बिगाड़ दें। जन्मों-जन्मों तक तुम्हारा पीछा करें। और ये ब्राह्मण हैं! ब्राह्मण ही नहीं हैं, ऋषि हैं, मुनि हैं। और इनको अभी भी ऋषि-मुनि कहने में किसी को शर्म नहीं, किसी को संकोच नहीं।
तुम जरा अपने ऋषि-मुनियों की कथाएं तो पढ़ो। अपने ब्राह्मणों का पिछला हिसाब-किताब तो देखो। इनमें तुम्हें शांत स्वभाव लोग मिलेंगे? न तो बुद्ध ब्राह्मण हैं, न महावीर ब्राह्मण हैं। इस देश में जिन्होंने शांति को उपलब्ध किया है, उनमें ब्राह्मणों का कहीं नाम नहीं आता, कहीं उल्लेख नहीं आता। ब्राह्मण महाभिमानी रहा है। स्वभावतः, वह शिखर पर था। वह सबके सिर पर बैठा था। अभिमान बिल्कुल स्वाभाविक था। हां, विनम्रता का ढोंग करता है। क्यों? क्योंकि विनम्रता को ही सम्मान मिलता है।
इस गणित को समझो। विनम्रता को सम्मान मिलता है इसलिए विनम्र हो जाता है। लेकिन सम्मान पाने की आकांक्षा में यह विनम्रता है।
एक सज्जन ने, चंद्रकांत त्रिवेदी ने प्रश्न पूछा है कि आप में विनम्रता नहीं दिखाई पड़ती। जब आप कहते हैं--"मेरे संन्यासी", तो यह तो अहंकार हो गया।
इस बात में सचाई है। मुझमें विनम्रता बिल्कुल नहीं, क्योंकि विनम्रता
तो केवल अहंकार का ही शीर्षासन करता हुआ रूप है। अहंकार ही नहीं तो विनम्रता मुझमें कैसे होगी? मैं विनम्र बिल्कुल नहीं हूं। मैं तो जैसा हूं वैसा हूं। न अहंकारी हूं, न विनम्र हूं। रह गए "मेरे संन्यासी" तो क्या मैं यह कहूं कि चंद्रकांत त्रिवेदी, "तुम्हारे संन्यासी"? सिर्फ विनम्र होने के लिए! भाड़ में जाए ऐसी विनम्रता। मुझे न कोई सम्मान चाहिए, इसलिए क्यों विनम्र होने का धोखा-धंधा करूं? सच्ची बात कहूंगा। मेरे संन्यासी हैं, अब मैं करूं क्या? मैं नहीं हूं, मगर संन्यासी तो मेरे हैं। मैं नहीं

हूं, इसीलिए तो ये मेरे संन्यासी हैं। यह "मेरे" तो केवल भाषा की बात है। अब क्या सिर्फ इससे बचने के लिए यह कहूं कि "आपके संन्यासी"?
नहीं, ऐसी विनम्रता, ऐसी कर्तव्यपरायणता, ऐसी शांति में मेरा कोई भरोसा नहीं।
मैंने सुना है कि लखनऊ में एक स्त्री गर्भवती हुई और गर्भवती बनी ही रही। नौ महीने आए, गुजर गए; नौ सालें आईं और गुजर गईं। और स्त्री की मुसीबत समझो। मगर लखनवी ढंग ही और, हिसाब ही और। यह तो बाद में राज खुला--नब्बे साल के बाद। क्या गुजरी होगी उस स्त्री पर! नब्बे साल बाद, मजबूरी में उसका पेट फाड़ा गया। तो दो बुजुर्ग निकले; बुजुर्ग तो हो ही चुके थे। थे छोटे-छोटे, मगर थे बुजुर्ग। बाल सफेद, दाढ़ी सफेद, बस एक पैर कब्र में ही था। और जो दृश्य था वह देखने योग्य था। पेट तो फाड़ दिया गया, तब सब राज खुला। वे दोनों एक-दूसरे से कहेंः "पहले आप!"
तब राज खुला कि क्यों नौ महीने में नहीं निकले। वह "पहले आप! कि नहीं हुजूर पहले आप!" वह विनम्रता मार गई। पेट फटा पड़ा है, मगर वह लखनवी विनम्रता, वे कहें कि "नहीं, पहले आप।" अरे, डाक्टर ने कहा, निकलो भी! जबरदस्ती निकालना पड़े, तब निकले वे। बामुश्किल निकले, बड़े बेमन से निकले, क्योंकि लखनवी रिवाज टूटा जा रहा है।
मैं कोई विनम्र नहीं, इस बात में मैं राजी हूं। मैं कोई अहंकारी भी नहीं। क्योंकि विनम्रता और अहंकार एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं शांत नहीं, मैं अशांत नहीं। क्योंकि वे दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं। और जब सिक्का गिरता है तो पूरा गिरता है। अगर तुमने आधा बचाया तो दूसरा आधा हिस्सा ज्यादा से ज्यादा छिपेगा, जा नहीं सकता। इसलिए विनम्रता के पीछे अहंकार छिपा रहता है। शांति के पीछे अशांति छिपी रहती है।
ब्राह्मण तो वह है, ब्रह्मज्ञानी तो वह है, जो अब अशांत ही न रहा, तो शांति का क्या करेगा? जो अब अहंकार से ही भरा न रहा, अब विनम्रता का क्या करेगा?
विनम्रता तो अहंकार पर लीपापोती है। विनम्रता तो अहंकार को सजावट देना है। अहंकार की बदबू को छिपाने के लिए थोड़ी सुगंध छिड़कना है; उसके आसपास धूप-दीप जलाना है। वह अहंकार की बचावट है। और शांति भी। और तुम्हारे तथाकथित सारे सदगुण सिर्फ धोखे हैं, प्रवंचनाएं हैं। ऐसे प्रवंचकों के पास जाकर क्या होगा?
सूत्र कहता हैः "धर्मात्मा, विद्वान... ।"
जो विद्वान है वह धर्मात्मा नहीं हो सकता। धर्म का पंडित हो सकता है। विद्वता उसकी है, इसलिए गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ हो सकता है। जैसे मोरारजी देसाई गीता-ज्ञान-मर्मज्ञ हो गए हैं जब से वे भूत-प्रेत हुए हैं। अब और तो कुछ बचा नहीं। अब करें भी क्या? आखिर में यही रह जाता है। तो अब गीता- ज्ञान-मर्मज्ञ हो गए!
पंडितों के पास धर्म नहीं होता, सिर्फ धर्म की बकवास होती है। हां, बकवास व्यवस्थित होगी, तर्कबद्ध होगी। और धर्म का तर्क से कोई संबंध नहीं है, व्यवस्था से भी कोई संबंध नहीं है। धर्म तो क्रांति है, बगावत है, विद्रोह है।
सूत्र कहता हैः "ऐसे व्यक्तियों की सेवा में उपस्थित होकर अपना समाधान करिए।"
अभी जिनका समाधान खुद नहीं हुआ वे खाक तुम्हारा समाधान करेंगे! भूल
कर ऐसे आदमियों के पास मत जाना। बचना, कहीं समाधान कर ही न दें! कहीं चलते- चलते कुछ पकड़ा न दें! पहले जो पकड़ा गए हैं उनसे ही तो जान मुसीबत में पड़ी है। अब ये और न पकड़ा दें कुछ। विद्वान से बचना। पंडित से बचना। उसकी छाया से बचना। यही असली शूद्र है। देखते ही एकदम भाग खड़े होना। "उससे समाधान प्राप्त करिए" जिसको समाधान खुद नहीं हुआ है!
"और उसके आचरण और उपदेश का अनुसरण कीजिए।"
यही तुम्हारी बीमारी है। यह तो बहुत मजेदार तैत्तरीय उपनिषद का सूत्र हुआ। यह तो छोटी बीमारी को मिटाने के लिए और बड़ी बीमारी दे दी। अक्सर ऐसा

हो जाता है कि छोटी बीमारी को भुलाने के लिए बड़ी बीमारी पकड़ा देना उपयोगी होता है।
मैंने सुना है, एक डाक्टर के दफ्तर में--हो सकता है अजित सरस्वती हों;
अब छिपाना क्या, अब बता ही देना ठीक है--एक महिला भीतर गई। कुंआरी युवती है और अजित सरस्वती ने उससे कह दिया कि तू कुंआरी नहीं है, तुझे गर्भ हुआ। वह एकदम भड़क गई कि क्या बातें करते हो! भनभना गई, लाल हो गई, कि मैं बिल्कुल कुंआरी हूं। मुझे कैसे गर्भाधारण हो सकता है? अरे किसी पुरुष का स्पर्श भी नहीं किया, तो गर्भाधारण कैसे हो सकता है? वह भनभना कर दरवाजा जोर से भड़का कर बाहर निकल आई--चिल्लाती हुई, चीखती हुई, नाराज होती हुई। अजित सरस्वती के असिस्टेंट ने पूछा कि आपने यह कैसी बात कही! अजित सरस्वती ने कहा, तुमने देखा नहीं, मैंने उसका इलाज कर दिया!
उसको हिचकी आने की बीमारी थी। जैसे ही अजित सरस्वती ने कहा कि तुझे गर्भ रह गया, हिचकी बंद हो गईं। अरे हिचकी ऐसे समय में चल सकती है! कुंआरी कन्या को तुम कह दो गर्भ रह गया, इलाज हो गया। हिचकी उसी क्षण बंद हो गई। मेरे गांव में एक जूते की दुकान थी। एक मुसलमान--थोड़े झक्की किस्म के-- उनकी प्रसिद्धि थीः हिचकी की बीमारी ठीक करना। उनकी दुकान वगैरह तो कम ही चलती थी मगर सत्संग वहां बहुत होता था। अब दुकान न चले तो और हो भी क्या? तो मेरा भी वहां अड्डा कभी-कभी होता था। वे मुझसे डरते बहुत थे। वे मेरी हाथ जोड़ कर प्रार्थना करते थे कि देखो भाई, मुझे भड़काओ मत। ऐसी बातें मत कहो कि मुझे फिर रात-रात भर नींद नहीं आती, कि मैं दूसरों की हिचकियां बंद कर देता हूं, तुम मेरी चला देते हो।
तो कभी जब मैं उनके सत्संग में बैठा होता, मजबूरी में उन्हें मेरा सत्संग करना पड़ता था। वे तो हाथ जोड़-जोड़ कर कहते थे कि अब जाओ, ग्राहक आते होंगे। अब वे फलाने पंडित जी आ रहे हैं, अब तुम जाओ, नहीं तो झगड़ा खड़ा हो जाएगा। एक-दो बार ऐसा मौका आया, जब मैं उनके पास बैठा था, कोई हिचकी का मरीज आया। हिचकी के मरीज दूर-दूर से आते थे। और वे करते क्या थे? उसको सामने बिठा लेते, और उनकी जूतों की दुकान थी सो मक्खियां वहां भनभनाती रहतीं। जूते-चप्पलों का ढेर, मक्खियां भनभनातीं, जूतों की बास। वे एक गिलास भर पानी लेते और एक मक्खी पकड़ कर दोनों पंख तोड़ कर उस गिलास में डालते--उसी आदमी के सामने--और कहतेः "पी जा!" पीने के पहले ही हिचकी बंद हो जाती। वह गिलास में जो कार्यक्रम करते थे, दवाई डालते थे!
मैंने उनसे पूछा, "इसका राज?"
उन्होंने कहा, "इसका राज साफ है। अरे कौन हिचकी लेगा ऐसी हालत देख कर,
जब इसको पीना पड़े! वह यह कार्यक्रम देख कर ही भूल जाता है हिचकी लेना। ऐसा मौका तो कभी-कभी आ जाता है, कुछ जिद्दी आ जाते हैं कि फिर भी हिचकी लिए जाते हैं, तो फिर उनको पीना पड़ता है। तो पीकर बंद हो जाती है। और मैं उनसे कह देता हूं कि अगर बंद न हो तो कल फिर आ जाना, क्योंकि और भी बड़ी दवाई हैं मेरे पास। जब मक्खी से बंद नहीं हो तो तिलचट्टा। जब उससे भी बंद न हो तो चूहा। तुम घबड़ाओ मत, बंद करके रहूंगा! ऐसे-ऐसे रस निचोडूंगा कि हिचकी बंद ही हो जाएगी।"
स्वभावतः, जब बड़ी बीमारी मिल जाए तो छोटी बीमारी भूल जाती है।
यह समाधान होगा, सत्यानंद? यह समाधान नहीं होगा, सिर्फ बड़ी बीमारी लेकर लौटोगे; उससे छोटी बीमारी निश्चित चली जाएगी। मगर छोटी जेल से बड़ी जेल में पहुंच गए, छोटी जंजीरों से बड़ी जंजीरों में उलझ गए।
हां, ब्रह्मज्ञानी हो कोई तो जरूर उसके पास जाना। मगर ब्रह्मज्ञानी
के पास यह कुछ भी नहीं होगा। न वह विचारशील होता, वह विचारमुक्त होता है; न वह तपस्वी होता, वह जीवन में सहज होता है; न कर्तव्यपरायण होता, प्रेम उसकी एकमात्र सुगंध होती है; न शांत स्वभाव होता, वह तो शून्य होता है। वहां कहां शांति और कहां अशांति? न ही धर्मात्मा विद्वान होता। क्योंकि धर्मात्मा किसको कहोगे? हिंदू एक को, मुसलमान दूसरे को, ईसाई तीसरे को, जैन चौथे को। किसको धर्मात्मा कहोगे? वह तो स्वयं धर्म स्वरूप होता है, धर्मात्मा नहीं होता। और जो धर्म स्वरूप होगा, वह सभी धर्मों का अतिक्रमण करके होता है। वह हिंदू नहीं होगा, मुसलमान नहीं होगा, ईसाई नहीं होगा, जैन

नहीं होगा। सिर्फ होना काफी है, सिर्फ होना पर्याप्त है। इस पर उसके कोई विशेषण नहीं होंगे। और विद्वान तो ऐसा व्यक्ति कभी नहीं होता। विद्वता बहुत पीछे छूट गई। विद्वता का रोग बहुत दूर छोड़ आया। जब उसे छोड़ आया तभी तो समाधि मिली। समाधि मिली तो समाधान मिला। और जिसको समाधि मिली है, उसके पास बैठ कर समाधान हो जाता है। न उपदेश का अनुसरण करना पड़ता, न आचरण का।
कल का प्रवचन सुन कर मुल्ला नसरुद्दीन ने तय कर लिया कि मुझे भी उस पार जाना है, नदी पार करनी है चाहे कुछ भी हो जाए। उसने अपने गुरु गोबरपुरी के परमहंस बाबा मुक्तानंद से पूछा, "मैं किस घाट से यात्रा शुरू करूं? बाबा पलटू कहते हैं--बहुतेरे हैं घाट। लेकिन मुझे तो तैरना ही नहीं आता। सिर्फ एक बार एक उस्ताद के कहने से नदी पर गया था। घाट पर काई जमी थी, मेरा पैर फिसल गया। और उसके बाद मैंने कसम खा ली थी कि जब तक तैरना न सीख जाऊं, कभी नदी-किनारे न फटकूंगा।"
अब मुश्किल खड़ी हो गई कि जब तक नदी के किनारे ही न फटकोगे, तैरना कैसे सीखोगे? और तैरना जब तक नहीं सीखोगे, "नदी के किनारे नहीं फटकूंगा!"
"और पलटू कहते हैं कि बहुतेरे हैं घाट! और जाना है उस पार। अब पलटू ने मेरी आंखें खोल दीं, मगर मैं बड़ी मुश्किल में हूं। मैं अपनी कसम तोड़ कर आज ही पार जाने को तत्पर हूं। अरे कोई एक ही घाट थोड़े ही है, कई घाट हैं। तो कोई तो ऐसा घाट भी होगा जहां काई न लगी हो। अतः हे मेरे परम गुरुदेव, तुम तो अच्छे-खासे तैराक हो, नदी से भलीभांति परिचित हो, तुम तो उस घाट पहुंच ही चुके हो। तुम मुझे ऐसे घाट पर ले चलो जहां काई न जमी हो और पानी भी उथला हो।"
बाबा ने कहा, "बेटा, एक भी ऐसा घाट नहीं है जहां पानी गहरा न हो। किंतु
एक घाट जरूर है जहां खतरा नहीं है, जरा भी जोखिम नहीं है।"
मुल्ला नसरुद्दीन मुक्तानंद की बातों में आकर उस घाट पर पहुंच गया, जहां एक तख्ती लगी थी--"डूबते व्यक्ति को बचाने वाले को दो सौ रुपये सरकारी इनाम मिलेगा।"
मुक्तानंद ने कहा, "देखो, तुम पानी में उतरो। यदि तुम डूबने लगे तो मैं तुम्हें बचाने कूद पडूंगा। इस प्रकार मुझे ढाई सौ रुपये पुरस्कार में मिल जाएंगे। और यदि खुदा न खास्ता तुम तैर ही गए तो उस पार लग जाओगे। इस तरह दोनों हाथ लड्डू ही लड्डू हैं।"
बेचारा नसरुद्दीन अपने गुरु की इस दलील से प्रभावित होकर, यद्यपि डर
तो रहा था, फिर भी पानी में उतर गया। चार कदम ही चल पाया था कि एक गड्ढे में डुबकी खा गया और जोर से चिल्लायाः "सहायता करो! सहायता करो!" बाबा मन ही मन में मुस्कुराए, लेकिन किनारे पर ही मूर्तिवत खड़े रहे। फिर आवाज आईः "मदद करो बाबा, मैं डूब रहा हूं! मदद करो!"
मुक्तानंद ने कहा, "अरे नसरुद्दीन, इसमें मदद की क्या जरूरत है? डूब जाओ। अब डूबने में तुम्हारी क्या मदद करूं? व्यर्थ शोरगुल न करो। अल्लाह का नाम लेकर डूब जा भाई। ऋषि-मुनि पहले ही कह गए हैं--जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ। अब पैठ जा, मौका आ गया तो चूक मत। मत चूक चौहान!" नसरुद्दीन की नाक में पानी भर रहा था। घबड़ाहट में जोर से चीखाः "अरे बाबा, मुझे बचाओ! यह ज्ञान की बकवास अभी नहीं। यह कोई सत्संग का वक्त नहीं। मैं मर जाऊंगा। क्या तुम भूल गए कि मुझे बचाने के कारण तुम ढाई सौ रुपयों का सरकारी इनाम पाओगे?"
मुक्तानंद ने कहा, "बच्चू, मैं तुम्हें बचाने वाला नहीं। शांतिपूर्वक
मर जाओ, इसी में फायदा है। अरे मरना सभी को है, एक न एक दिन मौत तो आती ही है। कल आई कि आज, देर-अबेर की बात है। अब मर ही जाओ, ऋषि-मुनि पहले ही कह गए हैंः जो डूबा सो ऊबरा।"
मुल्ला ने डूबते-डूबते आखिरी जिज्ञासा कीः "मगर तुम ऐसा क्यों कर रहे हो? क्या तुम्हें इनाम की परवाह नहीं? अरे मेरी छोड़ो, अपनी इनाम की तो सोचो।"
मुक्तानंद ने जवाब दिया, "परवाह क्यों नहीं! अरे इसी कारण तो तुम्हें बचा नहीं रहा। क्या तुमने इस तख्ती के पीछे लिखी दूसरी सूचना नहीं पढ़ी कि नदी में से लाश निकालने वाले को एक हजार रुपये का इनाम?"

दूसरा प्रश्नः
मेरे जैसे ज्ञानी, चरित्रवान व सज्जन व्यक्ति को आपने अज्ञानी, दुश्चरित्र व दुर्जन बना दिया--मेरे परिवारजन
अपशब्दों के साथ आप पर ऐसा मिथ्या आरोप लगाते हैं।
मेरे आंसू मात्र ही उनका उत्तर बन पाते हैं।
आप ही उन्हें कुछ कहने की अनुकंपा करें।
कैसे बताऊं मयखाने में क्या पी गया हूं मैं,
कैसी पिला दी आपने गूंगा हुआ हूं मैं।

चंद्रपाल भारती, घरवाले गलत तो नहीं कहते, सच ही कहते हैं। उनकी समझ
से सच ही कहते हैं। मुझसे मिलने के पहले तुम ज्ञानी रहे होओगे। और मेरा धंधा तो अज्ञानी बनाने का है, क्योंकि जब तक ज्ञान से छुटकारा न हो और जब तक अज्ञान की निर्दोषता तुम्हारे भीतर प्रकट न हो, तब तक बोध का दीया नहीं जलेगा, नहीं जलेगा! लाख करो उपाय, नहीं जलेगा। जो इस सत्य को स्वीकार करने में तत्पर है कि मैं नहीं जानता हूं, कुछ भी नहीं जानता हूं, उसने पहला कदम उठा लिया। और यह यात्रा सिर्फ दो कदमों की है। पहला कदम आधी यात्रा है। जिसने कहा कि मैं नहीं जानता हूं, जिसने गहरे में स्वीकार कर लिया कि जो मैं जानता था सब उधार था, कचरा था, मैं अज्ञानी हूं--वह फिर से निर्दोष बच्चे की भांति हो रहा। समाज ने जो उसके ऊपर थोपा था, उसने इनकार कर दिया। उसने सारे संस्कार उतार कर रख दिए। वह फिर निर्मल हुआ। उसका दुबारा जन्म हुआ। वह द्विज हुआ। यह ब्राह्मण होने का पहला कदम, ब्रह्मज्ञानी होने का पहला कदम। वह शून्य हुआ। इसी शून्य में तो पूर्ण उतरेगा।
यह ज्ञान के कचरे से ही तो तुम भरे हो। और क्या है तुम्हारे भीतर जो भरा है? इसी कचरे को तो राख कर देना है। तो तुम्हारे घर के लोग गलत नहीं कहते। तुम पहले ज्ञानी रहे होओगे और चरित्रवान भी रहे होओगे। "चरित्रवान" उनकी भाषा में, जिसको वे चरित्र कहते हैं। जिसको मैं चरित्र कहता हूं, उनके लिए दुश्चरित्र ही मालूम होगा।
मैं तो चरित्र कहता हूंः अपनी भीतर की अनुभूति से जीना। मगर कोई भी समाज उसको चरित्र नहीं कह सकता। इसलिए तो मुझ पर आरोपण उनका स्वाभाविक है कि मैं लोगों को दुश्चरित्रता सिखा रहा हूं। मैं इनकार भी नहीं करता। अगर उनकी चरित्र की परिभाषा ठीक है तो मैं दुश्चरित्रता सिखा रहा हूं। मगर उनकी परिभाषा गलत है। वे जिसको चरित्र कहते हैं, वह धोखा है, पाखंड है। वे चरित्र के नाम पर लोगों को झूठी जिंदगी जीने पर मजबूर कर रहे हैं।
मैं झूठी जिंदगी से लोगों को मुक्त करना चाहता हूं। मैं उनसे कहना चाहता हूं कि तुम्हारा सबसे बड़ा दायित्व अपने प्रति है। और अगर तुम अपने प्रति झूठे हो तो तुम सारी दुनिया के प्रति भी सच्चे हो जाओ, तो भी परमात्मा के समक्ष झूठे ही रहोगे। वह तुमसे यह नहीं पूछेगा कि तुम कितने तगमे लाए हो--सोने के, चांदी के, कितने वीर-चक्र, कितने महावीर-चक्र! वह तुमसे नहीं पूछेगा कि कितने सर्टिफिकेट लाए हो। वह तुमसे पूछेगा, क्या तुम जीए अपने ढंग से, जैसा मैंने तुम्हें बनाया था? मैंने तुम्हें जुही की तरह बनाया था, तुम गुलाब की तरह जीने की कोशिश करके जुही भी न हो पाए और गुलाब भी न हो सके। तुम्हारी ऊर्जा लग गई गुलाब होने में। और गुलाब तुम हो न सकते थे, वह मैंने तुम्हें कभी बनाया न था। वह तुम्हारा बीज न था। और तुम्हारी ऊर्जा लग गई गुलाब होने में। इसलिए तुम जो हो सकते थे, जुही हो सकते थे और रात सुगंध से भर सकती थी, लेकिन वह तुम न हो पाए, क्योंकि ऊर्जा ने गलत दिशा पकड़ ली।
परमात्मा तुमसे पूछेगा कि तुम तुम हो या नहीं? और तुम कहोगे, मैं? मैं महावीर का अनुयायी हूं। मैं बुद्ध का अनुयायी हूं। मैं शंकराचार्य का अनुयायी हूं।
ये बातें वहां न चलेंगी। परमात्मा पूछेगा, शंकराचार्य और बुद्ध और महावीर, उन्हें जो होना था हुए। तुम्हें किसने कहा था? अगर मुझे शंकराचार्य बनाने होते तो मैं फोर्ड की तरह फैक्टरी खोल देता। यहीं से

शंकराचार्य बना-बना कर भेजता। फिर मैंने तुम्हें किसलिए बनाया? मैंने गलती की तुम सोचते हो? तुम मेरी गलती में सुधार करने बैठे हो?
हसीद फकीर झुसिया मर रहा था। उसकी बूढ़ी चाची हमेशा उसके खिलाफ थी, क्योंकि वह कुछ ऐसी बातें कर रहा था जो यहूदी धर्म के विपरीत जाती। वह जीवन के ऐसे ढंग लोगों से कह रहा था जो कि परंपरा के अनुकूल नहीं थे। वह बुढ़िया उसे बहुत बार कह गई थी कि देख, तू सम्हल, अब तू भी बूढ़ा हो गया, अब मौत ज्यादा दूर नहीं है, अब तू मूसा का रास्ता पकड़, अब यह अपनी बकवास छोड़। मगरझुसिया हंसता। अब उस बूढ़ी को क्या कहता! हंसता और टाल जाता। वह मर रहा था, तो उसकी चाची फिर गई, झकझोरा उसको और कहा, "अब मरते वक्त तो कम से कम मूसा से प्रेम लगा ले। मरते वक्त तो कम से कम मूसा से अपना संबंध जोड़ ले।" झुसिया ने कहा, "देख, परमात्मा मुझसे यह नहीं पूछेगा कि तू मूसा क्यों नहीं हुआ। अरे मूसा बनाना होता उसे मुझे तो मूसा बनाता। वह मुझसे पूछेगा-- झुसिया, तू झुसिया क्यों नहीं हुआ? मेरी फिकर वह है। मेरा मूसा से क्या लेना-देना? न मूसा झुसिया था, न झुसिया को मूसा होने की कोई जरूरत है। और मैं तैयार हूं परमात्मा के सामने नग्न खड़ा होने को, क्योंकि मैंने कुछ भी उधार नहीं होना चाहा। जो उसने मुझे बनाया था, जैसा उसने मुझे बनाया था, अगर गलत बनाया था तो गलत सही, मगर मैं वही रहा हूं जैसा उसने बनाया था। मैंने उसमें रत्ती भर हेर-फेर नहीं किया। हालांकि बहुत लोगों ने टांगें घसीटीं और तू जिंदगी भर से मेरी टांग घसीट रही है। लेकिन मैं पूरी तरह राजी हूं। मैं परमात्मा के सामने नग्न खड़ा हो सकता हूं, मुझे कोई भय नहीं है। क्योंकि मैं अपनी सहजता से जीया हूं। अपनी निजता के फूल को मैंने खिलाया है, यह मैं उसके चरणों में चढ़ा सकूंगा। मैं आनंद से मर रहा हूं, तू चिंता न कर।"
चंद्रपाल भारती, तुम्हारे परिवार के लोग कहते हैं मैंने तुम्हें अज्ञानी बना दिया, चरित्रहीन बना दिया। कहां तुम चरित्रवान थे, सज्जन थे, दुर्जन बना दिया। ठीक ही कहते हैं बेचारे। उनका भी कसूर क्या? उनके पास आंखें नहीं हैं। वे अंधेरे को रोशनी समझते हैं और मौत को जिंदगी समझते हैं।
और अब तुम्हारी भी मुश्किल मैं समझता हूं। तुम कहते--
कैसे बताऊं मयखाने में क्या पी गया हूं मैं, कैसी पिला दी आपने गूंगा हुआ हूं मैं।
तुम मस्त रहो। अब कुछ भय न लो। ये भी हमारी पुरानी आदतें हैं असल में, उन्हीं लोगों की सिखाई हुई कि जब वे दुश्चरित्र कहते हैं तो हमें धक्का लगता है। यह भी पुरानी आदत है। अब यह धक्का भी छोड़ो। जब वे दुश्चरित्र कहें तो गीत गाओ। जब वे कहें अज्ञानी तो नाचो। जब वे कहें दुर्जन तो बांसुरी फूंको, पैरों में घुंघरू बांध लो। ऐसे नाचो कि वे पागल भी कहने लगें। अभी पागल नहीं कहा है। और जब पागल हो गए तो अब पागल को क्या पता कि क्या ज्ञान, क्या अज्ञान! क्या सज्जनता, क्या दुर्जनता! और क्या चरित्र और क्या दुश्चरित्र!
फिर से सलीब हम भी उठाने कहां चले? अपनी ही लाश खुद ही उठाने कहां चले? जीने की आरजू में जहर पी रहे हैं रोज! फिर भी हवा में नाम लिखाने कहां चले? दिल की हरेक बात है दुनिया में दिल्लगी! पानी में आग हम भी लगाने कहां चले? शामिल नहीं है कोई भी सच की तलाश में! हम जुस्तजू में खून बहाने कहां चले? ओंठों पे बर्फ और निगाहों में आबशार! हम जिंदगी का साथ निभाने कहां चले? मुश्किल तो होगी। लोग लाशें ढो रहे हैं, जहर पी रहे हैं। लोग जिंदा कहां हैं? लोग जिंदगी की भाषा भूल गए हैं। लोगों में कोई जुस्तजू ही नहीं, कोई तलाश नहीं सत्य की। वे तो अपने झूठों में राजी हैं। उन्होंने झूठों के महल बना रखे हैं। और निश्चित ही जब तुम इन महलों को कारागृह कहोगे और इन झूठों को झूठ कहोगे और इन झूठ के वस्त्रों को उतार दोगे और अपनी निर्मलता की घोषणा करोगे तो वे नाराज होंगे। और उनकी भीड़ है। भीड़ उनके साथ है। मस्ती के लिए यह कीमत तो चुकानी पड़ती है। इस दुनिया में बेकीमत तो कुछ
भी नहीं मिलता है। अब तुम चुन लो। यह मस्ती तुम्हें रास आती हो, यह मस्ती तुम्हारे भीतर आनंद के झरने फोड़ रही हो, तो क्या फिकर? ये मापदंड भी

उन्होंने ही दिए थे। तुम खुद ही उनसे कह दो कि मैं अज्ञानी हो गया, दुश्चरित्र हो गया, दुर्जन हो गया। तुम खुद ही उनसे कह दो कि अब नाहक आप परेशान हो रहे हैं और मैं तो हो ही गया, मैं तो गया काम से, अब नाहक क्यों अपना समय आप खराब कर रहे हो? तुम स्वीकार ही कर लो। अस्वीकार करने की भी क्या जरूरत है?
एक हवा ताजी, है छू गई चुपके-चुपके, एक और पात झरा -- आहिस्ते-आहिस्ते।
कब तक ले घूमेंगे, शिव सा संबंधों का शव, गल-गल गिर जाने दें, कुछ टूटे बोझिल रिश्ते। क्या अजब कुछ दिल टूटे, इस हयाते-फानी में, हम न थे आसमां के, कुछ वे न थे फरिश्ते। चुभे हैं खार, जब भी महके हैं यादों के गुलाब, जख्म नासूर हुए हैं, कुछ यूं रिसते-रिसते। कब तक ले घूमेंगे, शिव सा संबंधों का शव, गल-गल गिर जाने दें, कुछ टूटे बोझिल रिश्ते। क्यूं करें जख्मों का शिकवा और चोटों का गिला, कुछ संगे-दिल शालिग्राम हुए हैं घिसते-घिसते। एक हवा ताजी, है छू गई चुपके-चुपके, एक और पात झरा -- आहिस्ते-आहिस्ते।
झर जाने दो ये सारे पात--संबंधों के, रिश्तों के, मुर्दों के, मुर्दों
की धारणाओं के। ये सारे पात झर जाएं तो नये पात उमगें। ये सब पुरानी सड़ी- गली पत्तियां कब तक चिपकाए फिरोगे? ये कब की गिर जानी चाहिए थीं। भूलो यह अहंकार की भाषा--सम्मान, ज्ञान, चरित्र, सज्जनता। यह बकवास छोड़ो। सरल सहज आदमी बनो। तकलीफें तो आएंगी, मगर वे सब तकलीफें सौभाग्य सिद्ध होती हैं। और मुझसे जुड़े हो तो उपद्रव तो मोल ले ही लिया।
फिर वही गलियां, वही अगला तवाफे-कूए-यार। इश्क को मुज्दा कि फिर सामाने-रुसवाई है आज।।
फिर वही गलियां, वही प्यारे की गलियां!
फिर वही गलियां, वही अगला तवाफे-कूए-यार।
यार की गली के चक्कर। यह परमात्मा का रास्ता सभी के लिए तो नहीं। इस
पर तो कुछ दीवाने ही चल पाते हैं। कुछ परवाने ही शमा की तरफ झपटते हैं। यह सोच-विचार करने वालों का काम नहीं।
फिर वही गलियां, वही अगला तवाफे-कूए-यार।
अब तुम्हारी जिंदगी में तो यह प्रेम का एक नया आयाम खुला। यह प्यारे
की गलियों में प्रवेश हुआ। यह उसके मंदिर की यात्रा शुरू हुई।
इश्क को मुज्दा...
प्रेम का तो स्वागत है। प्रेम तो मंगल सूचना है। मगर इसकी मुश्किलें
भी हैं।
... कि फिर सामाने-रुसवाई है आज।
बदनामी बहुत होगी। प्रेम में और बदनामी न हो, ऐसा कभी हुआ है? और जितना बड़ा प्रेम उतनी बड़ी बदनामी। और मेरे जैसे व्यक्ति से प्रेम! फिर इससे कोई बड़ी बदनामी नहीं।
फिर वही गलियां, वही अगला तवाफे-कूए-यार। इश्क को मुज्दा कि फिर सामाने-रुसवाई है आज।। कौन है जिससे संभाला जाएगा मेरा जुनूं! खुद ही पाये-शौक को जंजीर पहनाई है आज।।
कौन है जिससे संभाला जाएगा मेरा जुनूं! मैं तो पागल हूं!
कौन है जिससे संभाला जाएगा मेरा जुनूं!
जो मेरे उन्माद को सम्हाल सके, मेरे पागलपन को झेल सके, उतनी छाती चाहिए।
कौन है जिससे संभाला जाएगा मेरा जुनूं! खुद ही पाये-शौक को जंजीर पहनाई है आज।।
तुम मुश्किल में तो पड़े, चंद्रपाल भारती। तुमने खुद ही अपने पैरों में यह प्रेम की जंजीर डाल ली। यह जंजीर मुक्ति की जंजीर है--और तुमने अपने ही हाथों डाल ली।
डर रहा हूं जानो-तन को फूंक डालेगी ये आग। मेरे सीने में जो जब्ते-गम
ने भड़काई है आज।। कह दो सैयादों से गुलचीनों को कर दो होशियार। फस्ले-गुल ने दूर तक जंजीर फैलाई है आज।।
कह दो सैयादों से! शिकारियों को खबर कर दो।
कह दो सैयादों से गुलचीनों को कर दो होशियार।

और बागवानों को होशियार कर दो।
फस्ले-गुल ने दूर तक जंजीर फैलाई है आज।।
वसंत ऋतु आ गई और उसने दूर तक अपना जाल फैला दिया है। जो इससे बच जाए, अभागा है। जो इसमें फंस जाए, सौभाग्यशाली है।
एक साहिल है कि उभरा है भंवर की गोद से। एक किश्ती है कि तूफानों से टकराई है आज।। जल उठा नब्जों में खूं रोशन हुए दिल में चिराग। शायरे-आतिश-नवा ने आग बरसाई है आज।।
मेरी बातें तो अंगारे हैं। तुम्हारे भीतर जो भी कचरा है, उसे जला डालेंगे--चरित्र का, ज्ञान का, दंभ का, सज्जनता का, विनम्रता का, धार्मिकता का। तुम्हारे भीतर जो भी कचरा है, उसे जला डालेंगे।
जल उठा नब्जों में खूं रोशन हुए दिल में चिराग। शायरे-आतिश-नवा ने आग बरसाई है आज।।
मैं तो अग्नि का कवि हूं--शायरे-आतिश-नवा--अग्नि-भाषी शायर! शायरे-आतिश-नवा ने आग बरसाई है आज। फिर वही गलियां, वही अगला तवाफे- कूए-यार। इश्क को मुज्दा कि फिर सामाने-रुसवाई है आज।। कौन है जिससे संभाला जाएगा मेरा जुनूं! खुद ही पाये-शौक को जंजीर पहनाई है आज।। डर रहा हूं जानो-तन को फूंक डालेगी ये आग। मेरे सीने में जो जब्ते-गम ने भड़काई है आज।। कह दो सैयादों से गुलचीनों को कर दो होशियार। फस्ले-गुल ने दूर तक जंजीर फैलाई है आज।। एक साहिल है कि उभरा है भंवर की गोद से। एक किश्ती है कि तूफानों से टकराई है आज।। जल उठा नब्जों में खूं रोशन हुए दिल में चिराग। शायरे-आतिश-नवा ने आग बरसाई है आज।।

आज इतना ही।

बहुतेरे हैं घाट
तीसरा प्रवचन

रसो वै सः की धूम

पहला प्रश्नः कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्।।
चरैवेति। चरैवेति।।
"जो सो रहा है वह कलि है, निद्रा से उठ बैठने वाला द्वापर है,
उठ कर खड़ा हो जाने वाला त्रेता है, लेकिन जो चल पड़ता है
वह कृतयुग, सतयुग, स्वर्ण-युग बन जाता है।
इसलिए चलते रहो, चलते रहो।"
ऐतरेय ब्राह्मण के इस सुभाषित का अभिप्राय समझाने का अनुग्रह करें।

नित्यानंद, यह सूत्र मेरे अत्यंत प्यारे सूत्रों में से एक है। जैसे मैंने ही कहा हो। मेरे प्राणों की झनकार है इसमें। सौ प्रतिशत मैं इससे राजी हूं। इस सूत्र के अतिरिक्त सतयुग की, द्वापर की, त्रेता की, कलियुग की जो भी परिभाषाएं शास्त्रों में की गईं, सभी गलत हैं। यह अकेला सूत्र है जो सम्यक दिशा में इशारा करता है।
यह सूत्र सतयुग से लेकर कलियुग तक की धारणा को समय से मुक्त कर लेता है; समाज से मुक्त कर लेता है; अतीत, भविष्य, वर्तमान से मुक्त कर लेता है और इसे प्रतिष्ठित कर देता है व्यक्ति की चेतना में, व्यक्ति के जागरण में, उसकी समाधि में।
और मेरे लेखे, न तो समाज सत्य है, न समय सत्य है; सत्य है तो केवल व्यक्ति। चूंकि व्यक्ति के पास स्पंदित प्राण है, जीवन है, बोध है, आत्मा है। समाज के पास न तो कोई आत्मा है, न कोई हृदय का स्पंदन है, न जागने की कोई संभावना है। जागने वाला ही वहां कोई नहीं; विवेक ही वहां कोई नहीं।
और समय तो मनुष्य की वासनाओं का विस्तार है।
अतीत का कोई अस्तित्व नहीं। जो बीता सो बीता, अब कहीं भी नहीं है, सिवाय तुम्हारी स्मृतियों में। जैसे यात्री गुजर जाए और धूल उड़ती रह जाए; उड़ती हुई धूल यात्री नहीं है। जैसे गीत विदा हो जाए और गूंज रह जाए; गूंज गीत नहीं है। मंदिर की घंटियां बज चुकी हों और मंदिर के सन्नाटे में उनकी गूंज थोड़ी देर तक छाई रहे, वैसी ही तुम्हारी स्मृति है--अतीत की धूल से ज्यादा नहीं; अतीत के धुएं से ज्यादा नहीं। जो जा चुका है उसकी अनुगूंज। तुम्हारी स्मृति के सिवाय अस्तित्व नहीं है कोई अतीत का। और भविष्य का कोई अस्तित्व नहीं है। भविष्य अभी आया ही नहीं है, उसका अस्तित्व कैसे होगा? लेकिन जो विक्षिप्त हैं वे अतीत में और भविष्य में ही जीते हैं। जो विमुक्त हैं वे वर्तमान में जीते हैं। क्योंकि वर्तमान ही केवल है। उसका न तुम्हारी स्मृति से कोई संबंध है और न तुम्हारी वासना से।
अतीत है स्मृतियों का संग्रह। जिन मुर्दों को तुम ढो रहे हो, वह अतीत है। जिन्हें तुम ढो रहे हो वे लाशें हैं--सड़ गईं, उनसे दुर्गंध उठ रही है। उस दुर्गंध ने तुम्हारा नर्क बना दिया है। मगर तुम लाशों को छोड़ते नहीं। तुम लाशों को सजाते हो। तुम लाशों की पूजा करते हो। तुम मुर्दों के भक्त हो। तुम मृत्यु के आराधक हो। और फिर अगर तुम्हारा जीवन इसी मृत्यु के नीचे दब जाता है, इसी जहर से विषाक्त हो जाता है, तो कुछ आश्चर्य नहीं। यह स्वाभाविक निष्पत्ति है। और अगर किसी तरह अतीत से छूटे भी तो एक पागलपन से छूटते नहीं कि तत्क्षण दूसरे पागलपन में प्रवेश कर जाते हो। वह दूसरा पागलपन हैः भविष्य। अतीत है स्मृति और भविष्य है वासना, कल्पना--ऐसा हो, ऐसा हो जाए। और जैसा तुम चाहते हो वैसा कभी न होगा। कभी हो भी जाए भूल-चूक से, कभी संयोगवशात वैसा हो भी जाए--तुम्हारे किए तो नहीं, लेकिन संयोग से हो जाए--तो भी तृप्ति नहीं आएगी।
यहां जो असफल होते हैं वे तो असफल होते ही हैं और सौ में निन्यानबे प्रतिशत असफल होते हैं, और यहां जो सफल होते हैं, उनकी असफलता और भी बड़ी है। असफलों से भी ज्यादा बड़ी है। क्योंकि जो असफल हुआ उसके मन में तो अभी

भी आशा होती है कि शायद कल जीत द्वार खटखटाए। अभी उसका भविष्य समाप्त नहीं होता। अभी वासना आज से हट कर कल पर चली जाती है। वही तो वासना का ढंग है। वह हमेशा आगे सरकती रहती है। अतीत है तुम्हारी पीछे पड़ने वाली छाया और भविष्य है तुम्हारी आगे पड़ने वाली छाया। छायाओं का क्या भरोसा? तुम आगे हटते हो, छाया और आगे हट जाती है। छाया माया है। इस छाया को तो तुम माया नहीं कहते, संसार को माया कहते हो। जो है उसको माया कहते हो और जो नहीं है उसके साथ विवाह रचाए बैठे हो, उसके साथ गठबंधन कर लिया है। और जो "नहीं है" में जीएगा, वह खाली ही रह जाएगा, रिक्त ही मरेगा।
कभी संयोग से यह भविष्य पूरा भी हो जाए... याद रखना, संयोग से; तुम्हारे किए से कुछ भी नहीं हो सकता। तुम बहुत छोटे हो, अस्तित्व बहुत बड़ा है। जैसे बूंद सागर से लड़े, क्या जीतने की उम्मीद? जैसे पत्ता उसी वृक्ष से लड़े जिससे उसे रसधार मिल रही है, क्या कोई संभावना है विजय की? हार सुनिश्चित है। लेकिन कभी भूले-चूके, दांव कहीं ठीक ही लग जाए, तो और भी बड़ी हार, और भी बड़ी पराजय, और भी बड़ा विषाद घेर लेता है। क्योंकि जीत तो हाथ लगती है, लेकिन जीत ने जो भरोसे दिए थे, जो वायदे किए थे, वे कुछ भी पूरे नहीं होते। जिस दिन जीत हाथ में लगती है, उस दिन पता चलता हैः जीत से बड़ी कोई हार नहीं। क्योंकि जीवन जिसके लिए लगा दिया, जिसे सोना समझ कर दौड़े थे... ।
और छोटे-छोटे लोग ही नहीं, तुम्हारे मर्यादा पुरुषोत्तम राम तक स्वर्ण-मृग के पीछे दौड़ रहे हैं! असली सीता को गंवा बैठे नकली स्वर्ण-मृग के पीछे! और यह सबकी कथा हैः असली को गंवा बैठते हैं लोग नकली के पीछे। सोने के मृग के पीछे भागे। पागल से पागल आदमी को भी समझ में आ जाएगा कि सोने के मृग कहीं होते हैं!
जगत को तो कहते हैं मृग-मरीचिका। यही राम जगत को तो कहते हैं कि जैसे सपने में देखा गया, माया, मृग-मरीचिका, जैसे कि मृग प्यासा भटक जाए मरुस्थल में और दूर उसे सरोवर दिखाई पड़े। और यही राम सोने के मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। किसकी मरीचिका बड़ी है? अगर मृग को मरुस्थल में प्यास के कारण दूर सूरज की किरणों के पड़ने से... ।
सूरज की किरणों का एक ढंग है। जब खाली रेत पर वे पड़ती हैं और रेत उत्तप्त हो जाती है, तो उत्तप्त रेत किरणों को वापस लौटाने लगती है। उन किरणों की लौटती हुई तरंगें दूर से यूं मालूम पड़ती हैं जैसे कि पानी लहरें ले रहा हो। मालूम ही नहीं पड़तीं, प्रमाण सहित मालूम पड़ती हैं। क्योंकि जब सूरज की किरणें वापस लौटती हैं तो उनकी लहरें जलवत ही होती हैं। तरंगें होती हैं और उन तरंगों में पास खड़े वृक्षों की प्रतिछाया बनती है, जैसे सरोवर में बनती है। उस प्रतिछाया को देख कर मृग को भरोसा आ जाता है, तर्क पूरा हो जाता हैः पानी होना ही चाहिए, नहीं तो छाया कैसे बनेगी? और प्यास इतनी है कि पानी को मान लेने की स्वाभाविकता है। प्यास जितनी बढ़ जाती है उतनी ही आंखें प्यास से आच्छादित हो जाती हैं। जहां पानी नहीं है वहां भी पानी दिखाई पड़ने लगता है। और फिर प्रमाण सहित।
तो मृग अगर धोखा खा जाए, क्षमा-योग्य है; मगर राम को मैं क्षमा न कर सकूंगा, राम तो बिल्कुल अक्षम्य हैं। ये बातें तो ज्ञान की, और जो कर रहे हैं वह मृग से भी गया-बीता। सोने का मृग नहीं होता, इसे बुद्धू से बुद्धू आदमी को भी समझने में अड़चन न आएगी। लेकिन राम सोने के मृग के पीछे चले गए और गंवा बैठे सीता को।
और राम ही गलती में थे, ऐसा नहीं था; सीता भी गलती में थी। क्योंकि जब राम चिल्लाए दूर जंगल से कि मुझे बचाओ, मैं खतरे में पड़ गया हूं, तो सीता ने धक्के दिए लक्ष्मण को कि तू जा। राम कह गए थे पहरा देना। लक्ष्मण दुविधा में पड़ गया--राम की मानूं कि सीता की मानूं? और सीता ने ऐसी चोट की लक्ष्मण पर कि तिलमिला उठा। कहीं घाव तो था, छू दिया सीता ने। वह घाव और सीता का छूना बड़ा अर्थपूर्ण है। सीता ने कहा, "मुझे पहले से ही पता है कि तेरी नजर मुझ पर है, कि राम अगर मर जाएं तो तू मुझ पर कब्जा कर ले।"
और सीता ने यह बात यूं ही नहीं कही होगी। लक्ष्मण के इरादे नेक इरादे रहे होंगे! और इसीलिए तो हम पति के छोटे भाई को देवर कहते थे। देवर का मतलब होता थाः दूसरा वर। बड़ा विदा हो तो सीनियारिटी देवर की है। देवर का मतलब

ही यह होता है कि नंबर दो। पहला नंबर हटे कि नंबर दो कब्जा करे। "देवर" शब्द अच्छा नहीं है, घृणित है। उस शब्द का उपयोग भी नहीं होना चाहिए। दूसरा वर! पंक्ति में खड़ा है कि बड़े भैया, अब जाओ भी! अब बहुत हो गया। अब कुछ थोड़ा जो बचा-खुचा है, मुझ गरीबदास को भी मिले!
यह लक्ष्मणदास पहले से ही इरादा यूं रखते थे। सीता ने चोट गहरी की। और चोट असली रही होगी, नहीं तो लक्ष्मण मुस्कुरा कर टाल जाता। कहताः "हंसी- मजाक न कर भाभी। मैं जाने वाला नहीं हूं।" लेकिन यह चोट कहीं पड़ी, घाव को छू गई, मवाद निकल आई होगी। गुस्से में आ गया।
यह गुस्सा यूं ही नहीं आता। जब तुम्हें कोई गाली देता है, और गाली अगर
खल जाती है तो मतलब यह था कि उसने छू दिया कोई तुम्हारा कोमल अंग, जिसे तुम बचाए फिरते थे।
मुझे इतनी गालियां पड़ती हैं, कोई चिंता नहीं, कोई कोमल अंग नहीं, कुछ छिपाया नहीं। मजा लेता हूं कि कैसे-कैसे प्यारे लोग हैं! कितना श्रम उठाते हैं! जितनी मेहनत गालियां देने में करते हैं, इतने में उनका गीत फूट सकता है। जितना श्रम मुझे गालियां देने में बिता रहे हैं, इतना श्रम अगर गीतों में लगा दें तो उनके जीवन में भी झरने बह उठें! उन पर मुझे दया आती है। लेकिन लक्ष्मण क्रोध में आ गया। चल पड़ा। इधर लक्ष्मण भी छोड़ कर चला गया, मतलब वह भी मानता है कि खतरा है, स्वर्ण-मृग सच्चा है, स्वर्ण-मृग के साथ पैदा हुआ खतरा सच्चा है। राम, जो कि परमात्मा के पर्यायवाची हैं इस देश में, अर्थात सर्वव्यापी हैं, लेकिन इतना न समझ पाए, यह सोने के मृग में व्याप्त न हो पाए। सर्वज्ञ हैं, सब जानते हैं, और इतना न जान पाए कि सोने के मृग नहीं होते! यह कैसी सर्वज्ञता? यह कैसा सर्वव्यापीपन? यह सब बकवास है। और सर्वशक्तिशाली हैं, तो सर्वशक्तिशाली को क्या खतरा हो सकता है जो वह चिल्लाए कि मुझे बचाओ? अब इसको कौन बचाएगा, सर्वशक्तिशाली को कौन बचाएगा?
लेकिन अंधे लोग अंधी धारणाओं में जीते चले जाते हैं--न प्रश्न उठाते,
न पूछते, कि एक बार पुनर्विचार तो करें। और यूं सीता चोरी गई। और सीता वास्तविक थी। और सीता का यह अपहरण, इसमें तीनों का हाथ है--राम का, लक्ष्मण का, सीता का। रावण का अकेला जिम्मा नहीं है। रावण नंबर चार है। अगर इन तीन ने गलती न की होती तो रावण चुरा न सकता था।
लेकिन यही सबकी दशा है। अतीत में जी रहे हैं--जो नहीं है। और भविष्य में जी रहे हैं--जो नहीं है। और "जो है" उसको गंवा रहे हैं।
इस सूत्र ने समय से सतयुग की और कलियुग की धारणा को मुक्त कर दिया। वही चेष्टा मैं कर रहा हूं। तुम्हें समझाया गया है कि सबसे पहले कृतयुग था, सतयुग था, स्वर्ण-युग था। यह बकवास है। इसका तो मतलब हुआ--आदमी का ह्नास हो रहा है, पतन हो रहा है, आदमी नीचे गिर रहा है। पहले सब श्रेष्ठ था, अब सब अश्रेष्ठ हो गया है। समय जब पूर्ण संतुलित था, तब कृतयुग था, सतयुग था। जो करते, उसका तत्क्षण फल मिलता था--इसलिए कृतयुग। सतयुगः क्योंकि जो बोलते वही सत्य होता, कहीं कोई झूठ न था। स्वर्ण-युगः कहीं कोई दीनता न थी, दासता न थी, दरिद्रता न थी।
ये सब बातें झूठ हैं। जितने पीछे जाओगे उतनी दरिद्रता थी, उतनी दीनता थी, उतनी गुलामी थी। राम के समय में बाजारों में आदमी बिकते थे। गोभी, टमाटर, आलू--इसी तरह आदमी, उनकी नीलामी होती थी। उनको टिकटियों पर खड़ा करके दाम लगाए जाते थे।
मुल्ला नसरुद्दीन कल पिटा-पिटाया आया था। पट्टियां बंधी थीं, पलस्तर हाथ पर चढ़ा था। मैंने कहा, "क्या हुआ? किसी कार, ट्रक, रेलगाड़ी, किसके नीचे आ गए?"
उसने कहा, "कुछ नहीं। पति हूं, पत्नी के नीचे आ गया। जरा सी भूल हो गई
और ऐसी गति हुई, ऐसा मारा उसने कि छठी का दूध याद दिला दिया।"
मैंने पूछा, "ऐसी क्या भूल हो गई जो इतना नाराज पत्नी हो गई? आखिर क्या?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "अब क्या कहूं! अब क्या और कह कर अपनी फजीहत कराऊं! एक सपने के पीछे सब हुआ।"

मैंने पूछा, "सपने के पीछे?"
उसने कहा, "हां, पत्नी ने एक रात पहले सपना देखा और कहने लगी कि बड़ा अजीब सपना था, फजलू के पिता, कहे बिना नहीं रहा जाता। मैंने देखा एक जगह मस्तिष्क नीलाम हो रहे हैं। कोई मस्तिष्क दस हजार में, कोई पच्चीस हजार में, कोई पचास हजार में। पूछा मैंने कि ये मस्तिष्क इतने-इतने दाम के? तो पता चला कि कोई वैज्ञानिक का मस्तिष्क है, कोई संत का मस्तिष्क है, कोई गणितज्ञ का, कोई संगीतज्ञ का, कोई कवि का, कोई चित्रकार का, बड़े कीमती हैं।" मुल्ला नसरुद्दीन ने पूछा, "यह भी तो बता, मेरा भी मस्तिष्क नीलाम हो रहा था कि नहीं?"
उसने कहा, "हो रहा था। उसी नीलामी कोदेख कर तो मेरी नींद टूटी। एक रुपये के दर्जन! बंडल में बंधे थे। बाकी सब तो अलग-अलग बिक रहे थे, तुम्हारा तो दर्जन में बिक रहा था। और रुपये के दर्जन भर! और बेचने वाला कह रहा था कि अगर और चाहिए तो और भी दे दूं। इनको खरीदता ही कौन है!" स्वभावतः मुल्ला को चोट लगी, सदमा पहुंचा भारी। सो उसने कहा, "मैंने
भी दूसरे दिन बना कर एक सपना बोल दिया। उसी से यह मेरी हालत हुई। दूसरे दिन सुबह मैंने भी कहा कि मैंने भी एक सपना देखा कि नीलाम हो रहे हैं मुंह। एक से एक बकवासी! किसी की कीमत पचास हजार, क्योंकि वह राष्ट्रपति। किसी की कीमत लाख, क्योंकि वह प्रधानमंत्री। किसी की कीमत पच्चीस हजार, क्योंकि वह बड़ा कवि। किसी की कीमत पंद्रह हजार, वह बड़ा संगीतज्ञ, बड़ा गायक।"
पत्नी ने कहा, "और मेरा भी मुंह नीलाम हो रहा था कि नहीं?"
मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, "हो रहा था। अरे तेरे मुंह में ही तो नीलामी
चल रही थी!"
"बस यह सुनते ही अब आप देख ही रहे हैं कि जो मेरी गति हो गई!"
तुम जी रहे हो सपनों में। अतीत भी सपना है, भविष्य भी सपना है। एक जा चुका, एक आया नहीं। और इन दो पाटों के बीच पिस रहे हो। लेकिन ये कहानियां तुम्हें यही कही जा रही हैं कि पहले था कृतयुग; वहां तुम जो करते वही हो जाता। उस समय यह कहावत सच न थीः मैन प्रपोजेज एंड गॉड डिस्पोजेज। आदमी प्रस्तावित करता है और ईश्वर इनकार कर देता है--यह उस समय बात नहीं होती थी। तुमने प्रस्ताव किया और परमात्मा ने स्वीकार किया, तत्क्षण; वह कृतयुग था। सभी लोग कल्पवृक्षों के नीचे बैठे थे, यूं समझो। जो चाहा, हुआ। सतयुग था, कोई झूठ नहीं बोलता था। लोग मकानों पर ताले नहीं लगाते थे।
यह सब बकवास है। यह बिल्कुल बकवास है। दीनता भयंकर थी। राम के समय में बाजारों में स्त्रियां और पुरुष बिक रहे थे, इससे ज्यादा दीनता और क्या होगी? दरिद्रता भयंकर थी। हां, यह और बात है कि दरिद्र की दरिद्रता इतनी भयंकर थी कि वह बगावत भी करने का विचार नहीं कर सकता था। बगावत के लिए भी थोड़े सुख का स्वाद चाहिए।
बगावत हमेशा मध्यवर्गीय लोगों से उठती है, दरिद्रों से नहीं उठती, दीनों से नहीं उठती, भिखमंगों से नहीं उठती। तुमने कोई क्रांतियां भिखमंगों से होते हुए नहीं देखी होंगी कि भिखमंगों ने क्रांति कर दी। भिखमंगे ने तो स्वाद ही नहीं जाना सुख का, क्रांति कैसे करेगा? ये तो मध्यवर्गीय लोग, कार्ल मार्क्स और लेनिन और एंजिल्स और माओत्से तुंग और स्टैलिन, सब मध्यवर्गीय लोग हैं। बातें करते हैं गरीब की। गरीब को भड़काते हैं, क्योंकि उसी के बल पर खड़े हो सकते हैं। अमीर के खिलाफ खड़े होना है। अमीर को तो भड़का नहीं सकते। गरीब को भड़का सकते हैं। मगर ध्यान रखना कि जो भड़काने वाला है वह दोनों के बीच में है; न वह गरीब है, न वह अमीर है, वह मध्य में है, त्रिशंकु की भांति है। उसने थोड़ा सा सुख पाया है अमीरी का और बहुत दुख पाया है गरीबी का। अब उसको भरोसा है कि अगर थोड़ी चेष्टा करे तो अमीर हो सकता है। गरीब का सहारा लेना पड़ेगा।
इसलिए क्रांतियां मध्यवर्गीय लोग करते हैं। गरीब का उपयोग करते हैं क्रांति में। कटता हमेशा गरीब है। चाहे अमीर काटे, चाहे मध्यवर्गीय काटे-- कटेगा गरीब।
मेरे पिता के पिता सीधे-सादे ग्रामीण आदमी थे, मगर वे कुछ कहावतें बड़ी कीमती बोलते थे। कपड़े की उनकी छोटी सी दुकान थी और वे ग्राहक से पहले ही

पूछ लेते थे, "क्या इरादे हैं? दाम ठीक-ठीक बता दूं? मोल-भाव नहीं होगा फिर। या कि मोल-भाव करना है? तो फिर उस हिसाब से चलूं। एक बात ख्याल रखना कि तरबूज छुरे पर गिरे कि छुरा तरबूज पर गिरे, हर हालत में तरबूज कटेगा। इसलिए जो तुम्हारी मर्जी। कटोगे तुम ही।"
और उनसे लोग राजी होते थे, यह कहावत ग्रामीणों को जंचती थी कि बात तो
सच है, चाहे खरबूज को गिराओ छुरे पर और चाहे छुरे को गिराओ खरबूज पर, कोई छुरा कटने वाला नहीं है। सो वे उनसे राजी हो जाते थे कि आप, मोल-भाव करने में कोई सार नहीं, जो ठीक-ठीक भाव हो वह बता दें; कि जब कटना ही मुझे है तो जितना कम कटूं उतना ही बेहतर। तो छुरे पर ही छोड़ देना ठीक है।
गरीब कटता रहा हमेशा। उस समय में इतना कटता था कि उसकी चीख भी नहीं निकलती थी। और यह भी बात झूठ है कि घरों में ताले नहीं लगते थे। नहीं तो बुद्ध और महावीर और ऋग्वेद के समय में हुए जैनों के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव, ये सब किसको समझा रहे हैं कि चोरी मत करो? अगर चोरी होती नहीं थी तो ये पागल हैं, ये तीर्थंकर और ये बुद्ध और ये सारे संत-महात्मा, सब विक्षिप्त हैं, इनका दिमाग खराब है।
यह हो सकता है कि लोगों को ताला बनाना न आता हो, यह मेरी समझ में आ सकता है। ताला बनाने के लिए भी थोड़े विज्ञान का विकास चाहिए। या यह भी हो सकता है कि ताला लगाएं क्या, भीतर कुछ हो बचाने को तो ताला लगाएं! और ताले पर खर्चा क्या करना! ताला भी तो खरीदने के लिए कुछ हैसियत चाहिए। फिर ताला लगाने के लिए भी तो भीतर कुछ चाहिए, नहीं तो ताला वैसे ही लगा कर चोरों को निमंत्रण दो! वे ताला देख कर ही आएंगे। जिस घर में ताला ही नहीं लगा है उसमें कोई चोर आएगा?
लेकिन चोरी निश्चित होती थी, क्योंकि वेदों तक में चोरी के खिलाफ वक्तव्य हैं। दुनिया में जो सबसे पुराना शिलालेख मिला है, वह शिलालेख कहता हैः चोरी मत करो, बेईमानी मत करो, धोखाधड़ी मत करो, यह आदमियत का पतन है। वह सात हजार साल पुराना शिलालेख बेबीलोन में मिला है। उसमें जो वक्तव्य हैं वे विचारणीय हैं। उसमें कहा गया है कि पत्नियां पतियों की नहीं मानतीं; बाप की बेटे नहीं मानते; कोई किसी की नहीं सुनता; शिष्य गुरुओं के साथ बगावत कर रहे हैं। ये किस बात की खबर देते हैं ये शिलालेख? ये इस बात की खबर देते हैं कि दुनिया आज से भी बदतर थी, आज से भी बुरी थी। युद्धों के समर्थन में सारे शास्त्र हैं। एक शास्त्र ने भी युद्ध का विरोध नहीं किया है। आज दुनिया में लाखों लोग हैं जो युद्ध के विरोध में हैं। सारे शास्त्र स्त्रियों की गुलामी के पक्ष में हैं। आज करोड़ों लोग हैं जो स्त्रियों की मुक्ति के आंदोलन में सहयोगी हैं। सभी शास्त्रों ने गुलाम को, दास को समझाया है कि यही तेरी नियति है, यही तेरा भाग्य है, विधाता ने तेरी खोपड़ी में लिख दिया है, अब इससे बचने का कोई उपाय नहीं, सहज भाव से गुजार ले। लेकिन किसी ने क्रांति का उदघोष नहीं दिया है। क्या खाक कृतयुग था यह? क्या खाक सतयुग था यह?
हां, रहा होगा स्वर्ण-युग कुछ लोगों के लिए। लोग कहते हैं कि भारत कभी सोने की चिड़िया थी। जिनके लिए तब थी, उनके लिए अब भी है। बिड़ला के लिए, टाटा के लिए, सिंघानिया के लिए, साहू के लिए अब भी सोने की चिड़िया है। इनके लिए तब भी थी। इनके लिए हमेशा थी। लेकिन यह कोई पूरे भारत के संबंध में सचाई नहीं है।
असल में जिस देश में जितनी गरीबी होती है उस देश में थोड़े से लोगों के पास अपार संपदा जुड़ ही जाएगी। यह अनिवार्य है। अपार संपदा जुड़ ही तब सकती है जब कि बहुत बड़ी गरीबी का विस्तार हो। जैसे कि पिरामिड बनाया जाता है तो नीचे बड़ी बुनियाद रखनी होती है, फिर धीरे-धीरे पिरामिड छोटा होता जाता है, फिर शिखर होता है पिरामिड का। अगर शिखर लाना हो तो नीचे बड़ी बुनियाद डालनी होगी।
और तुम्हें याद होना चाहिए, पिरामिड किन लोगों ने बनाए? जिन्होंने बनाए उनके पास सोना था, खूब सोना था। लेकिन पिरामिड, एक-एक पिरामिड के बनने में हजारों लोगों की जानें गईं। क्योंकि उन पत्थरों को चढ़ाने में... आसान मामला नहीं था, मशीनें न थीं... कोड़ों के बल वे पत्थर चढ़वाए गए। एक-एक पत्थर

कोढोने में कभी-कभी हजार-हजार लोगों की पीठों पर कोड़े पड़ते थे। हजार लोग घोड़ों की तरह जुटे हुए थे और उनके पीछे कोड़े पड़ रहे थे। उन कोड़ों की मार के पीछे, अपनी जान को बचाने के लिए, लहूलुहान छातियों को लिए हुए लोगों ने वे पत्थर चढ़ाए। अब पिरामिड के सौंदर्य की खूब चर्चा होती है।
अब ताजमहल को देखने दूर-दूर से लोग आते हैं। जरूर जिसके पास सोना था, उसने ताजमहल बनवाया। लेकिन जिन लोगों ने बनाया--तीन पीढ़ियां लगीं ताजमहल के बनने में--उन सबके हाथ कटवा दिए गए, ताकि फिर ताजमहल जैसी कोई दूसरी कृति न बन सके। और जिस स्त्री के लिए ताजमहल बनवाया गया था, उससे कुछ खास लगाव था बनवाने वाले का, ऐसा नहीं। क्योंकि उसकी और भी सैकड़ों स्त्रियां थीं। यह अपने ही अहंकार की उदघोषणा थी। यह किसी मुमताज के लिए बनवाई गई कब्र न थी। ऐसी तो बहुत मुमताजें बादशाह के पास थीं। यह मुमताज भी किसी और की औरत थी और जबरदस्ती छीनी गई थी। इससे क्या लेना-देना था! बादशाह को तो मकबरा बनाना था।
और शाहजहां, जिसने यह मकबरा बनवाया, उसके बेटे को यह बात साफ थी, औरंगजेब को, कि यह मकबरा अहंकार का प्रतीक है। शाहजहां एक और मकबरा बनवा रहा था यमुना के दूसरी तरफ। यह मकबरा सफेद संगमरमर से बनवाया गया है, दूसरा मकबरा काले संगमरमर से बनवाया जा रहा था। वह मकबरा खुद शाहजहां की कब्र बनने वाली थी। वह इससे भी बड़ा होने वाला था। स्वभावतः, पत्नी के मुकाबले पति का मकबरा बड़ा होना चाहिए! वह इससे भी विशाल होने वाला था। दुनिया वंचित ही रह गई, उसकी सिर्फ बुनियाद रखी जा सकी। और औरंगजेब ने शाहजहां को कैद कर लिया। और उसने कहा, "यह मकबरा नहीं बनेगा। ये अहंकार के शिखर नहीं उठेंगे।" उसने मकबरा नहीं बनने दिया।
जब शाहजहां कैद कर लिया गया तो उसने एक ही प्रार्थना की औरंगजेब से कि
और मुझे कुछ नहीं चाहिए, लेकिन तीस बच्चे मुझे दे दो जिनको मैं पढ़ाऊं- लिखाऊं। दिन भर बैठा-बैठा खाली, दिन गुजारना मुश्किल।
औरंगजेब ने अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि शाहजहां को हुकूमत करने
का रस जाता नहीं। अब तीस बच्चों की छाती पर मूंग दलेगा। अब इन तीस बच्चों के बीच में ही सम्राट बन कर बैठेगा। अब इन तीस बच्चों को ही सताएगा, आज्ञा देगा। पुरानी आदतें नहीं जातीं।
जरूर कुछ लोगों के पास धन था, होने ही वाला था, क्योंकि सबका धन छीन लिया गया था। सोने की चिड़िया भारत न कभी थी, न आज है। लेकिन कुछ लोगों के पास सोना था, खूब सोना था। सारा देश चूस लिया गया था। इसको स्वर्ण-युग कहते हो?
यह धारणा प्रचारित की गई है पंडितों के द्वारा कि सब सुंदर बीत चुका;
अब आगे सिर्फ अंधेरा है, निराशा है। इसलिए अब निराशा को अंगीकार करो, अंधेरे को जीओ। शांति से जीओ, संतोष से जीओ, ताकि भविष्य में परमात्मा तुम्हारे संतोष के लिए तुम्हें पुरस्कार दे।
यह क्रांति का गला घोंटने का उपाय है। इन पंडितों ने यह प्रचारित किया है कि जब सतयुग था तो समय चार पैरों पर खड़ा था। जैसे कुर्सी में चार पैर होते हैं तो संतुलित होती है। फिर आया त्रेता; तो समय की एक टांग टूट गई। जैसे तिपाई होती है, तीन पैरों पर। संतुलन अब भी रहा, लेकिन वह संतुलन न रहा जो चार पैरों से होता है। तिपाई जल्दी उलट सकती है, जरा सा धक्का देने से उलट सकती है। तीन ही टांगें हैं उसकी, इसलिए त्रेता। फिर द्वापर; एक टांग और टूट गई। अब तो दो पैर पर समय खड़ा हुआ। और ये दो पैर भी ऐसे नहीं जैसे बैलगाड़ी के होते हैं, बल्कि यूं समझो जैसे साइकिल के होते हैं। पैडल मारते रहो, मारते रहो, तो चलता है; जरा पैडल रुका कि साइकिल भी गिरी, तुम भी गिरे, हाथ-पैर भी टूटे। और सबसे बुरी हालत है कलियुग की; कलियुग यानी जब एक ही पैर बचा। अब हर आदमी लंगड़ा है और हर आदमी बैसाखी लिए है। हर आदमी काना है और हर आदमी का एक कान सड़ चुका है। हर आदमी का एक फेफड़ा मर चुका है। हर आदमी आधा लकवा खा गया है। यह कलियुग है। अब आगे सिर्फ कब्र है और कुछ भी नहीं। प्रतीक्षा करो। एक पैर तो कब्र में तुम्हारा जा ही चुका है; एक ही बाहर बचा है। अब ज्यादा की कुछ आशा न करो। अब जीवन में सुख की संभावना मत मानो। अब क्या तीर्थंकर होंगे? अब क्या अवतार होंगे? अब क्या बुद्ध

होंगे? अब तो बुद्धुओं में ही रहना है और बुद्धू ही रहना है। कोई इस बुद्धूपन से छुटकारे का उपाय नहीं।
यह निराशा पंडित फैला रहे हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण बात है। और जिस देश
के मन में ये निराशा के भाव बैठ जाएं, उसका भविष्य धूमिल हो गया। इसलिए नहीं कि भविष्य धूमिल था; इस धारणा ने धूमिल कर दिया। और स्वभावतः, हर धारणा में एक दुष्ट-चक्र होता है। जब तुम एक धारणा मान कर चलते हो कि अब भविष्य अंधकारपूर्ण है तो तुम इस ढंग से जीते हो कि प्रकाश तो होना नहीं है, इसलिए प्रकाश लाने की जरूरत क्या? घर में तेल हो, बाती हो, दीया हो, माचिस हो, तो भी तुम दीया जलाते नहीं। जब दीया जलना ही नहीं है, जब यह समय के ही अनुकूल नहीं है, तो क्यों खाक मेहनत करनी, अंधेरे में ही जीओ! और जब अंधेरे में जीते हो तो स्वभावतः तुम्हारी धारणा को पोषण मिलता है कि ठीक कह गए संत, ठीक कह गए महंत, ठीक कह गए ऋषि-मुनि कि आगे अंधेरा ही अंधेरा है। अंधेरा ही तो दिख रहा है। अंधेरा बढ़ता ही जा रहा है। तुम्हारी धारणा के कारण दीया नहीं जलाते हो, क्योंकि आगे अंधेरा है, दीया जलने वाला नहीं। जैसे कि अंधेरे ने कभी दीये को बुझाया है! अंधेरे की क्या कुव्वत है, क्या बिसात है कि दीये को बुझा दे? अंधेरा नपुंसक है। अंधेरा है ही नहीं। जब दीया जलता है तो तुम लाकर टोकरी भर अंधेरा भी उसके ऊपर डाल दो तो भी दीया बुझेगा नहीं। लेकिन अंधेरे के डर से लोग दीया नहीं जला रहे हैं, तो फिर तो अंधेरा रहेगा। और जब अंधेरा रहेगा तो स्वभावतः धारणा को पोषण मिलेगा कि ठीक कहा, ठीक कहा शास्त्रों ने कि अंधेरा ही अंधेरा है!
तुम जीवन को सुंदर बनाने की चेष्टा छोड़ दिए तो सड़ गए। सड़ गए तो तुम्हारे ऋषि-मुनि सही सिद्ध हो रहे हैं कि यह तो होना ही था, यह तो पहले ही कह गए थे लोग। मानो या न मानो, मगर जो होना है वह होना है। जो बदा है वह होना है। इस तरह भारत को भाग्यवादी बना दिया है।
मैं इस सूत्र से पूरा राजी हूं, क्योंकि यह सूत्र क्रांतिकारी है, आग्नेय है। यह सूत्र तुम्हारी समझ में आ जाए तो तुम्हें धर्म की नयी परिभाषा, एक नया बोध पैदा हो, एक नयी किरण जगे।
कलिः शयानो भवति... ।
इसने अर्थ ही बदल दिया। यह सूत्र कहता हैः "जो सो रहा है वह कलि है।"
इसने संबंध ही तोड़ दिया समय से। इसने संबंध जोड़ दिया मूर्च्छा से।
और यही बुद्ध पुरुषों का अनुदान है इस जगत को कि तुम्हारे कांटों को
भी फूलों में बदल देते हैं; तुम्हारी मूढ़ताओं को भी बोध की दिशा दे देते हैं; तुम्हारे अंधविश्वासों को भी श्रद्धा का आयाम बना देते हैं।
"जो सो रहा है वह कलि है।"
जो मूर्च्छित है वह अगर हजार साल पहले था तो भी कलियुग में था और दस हजार साल पहले था तो भी कलियुग में था। उसके सोने में कलियुग है।
कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
"निद्रा से उठ बैठने वाला द्वापर है।"
और जो कभी भी निद्रा से उठ बैठा, जिसने झाड़ दी निद्रा, जो लेटा नहीं, बैठ गया, वह द्वापर है। जब भी बैठ गया--आज तो आज, अतीत में तो अतीत में, भविष्य में तो भविष्य में--जब भी बैठ गया तब द्वापर है। उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति... ।
"और जो उठ खड़ा हुआ वह त्रेता है।"
सो रहे हैं सारे लोग। मूर्च्छित हैं सारे लोग। उन्हें यह भी पता नहीं--वे कौन हैं, क्यों हैं, किसलिए हैं, कहां से आते हैं, कहां जाते हैं, क्या है उनका स्वभाव? यह मूर्च्छा है। अपने से अपरिचित होना मूर्च्छा है। अपने से परिचित होने की पहली किरण--जब तुम नींद से उठ बैठे, आंख खोली, बैठ गए--तो द्वापर का प्रारंभ है। ये तुम्हारे चेतना के चरण हैं, समय के नहीं। ... कृतं संपद्यते चरन्।
"और जो चल पड़ता है वह कृतयुग बन जाता है।"
सोना, उठ बैठना, चल पड़ना। जो चल पड़ा वह कृतयुग है। उसके जीवन में स्वर्ण-विहान आ गया। गति आ गई तो जीवन आ गया। गत्यात्मकता आ गई तो ऊषा आ गई। तो रात टूट गई, पूरी तरह टूट गई।

चरैवेति। चरैवेति।।
इसलिए ऐतरेय उपनिषद यह सूत्र देता हैः "चलते रहो, चलते रहो।"
रुकना ही मत। अनंत यात्रा है यह। इसकी कोई मंजिल नहीं। यात्रा ही मंजिल है। यात्रा का हर कदम मंजिल है। अगर तुम हर कदम को उसकी परिपूर्णता में जीओ तो कहीं और मंजिल नहीं; यहीं है, अभी है, वर्तमान में है। भविष्य में नहीं, अतीत में नहीं; तुम्हारे बोध में है, तुम्हारे बोध की समग्रता में है।
मैं इस सूत्र से पूर्णतया राजी हूंः चरैवेति! चरैवेति! चलते रहो। चलते रहो। कहीं रुकना नहीं है। रुके कि मरे। रुके कि सड़े। बहते रहे तो स्वच्छ रहे।
और यह देश सड़ा इसलिए कि रुक गया। और कब का रुक गया! यह अब भी स्वर्ण-युग
की बातें कर रहा है, सतयुग की, कृतयुग की बातें कर रहा है। यह अभी भी बकवास में पड़ा हुआ है। अभी भी रामलीला देखी जा रही है। अभी भी बुद्धू रासलीला कर रहे हैं। हर साल वही नाटक। सदियों से चल रहा है वही नाटक। नाटक में भी कुछ नया जोड़ने की सामर्थ्य नहीं है। और कहीं कुछ नया जोड़ दिया जाए तो उपद्रव हो जाता है।
रीवां के एक कालेज में रामलीला खेली उन्होंने--युवकों ने। जरा बुद्धि
का उपयोग किया। युवक थे, जवान थे, तो थोड़ी बुद्धि का उपयोग किया। सो उन्होंने रामचंद्र जी को सूट-बूट पहना दिए, टाई बांध दी, हैट लगा दिया। अब हैट, सूट-बूट और टाई के साथ धनुष-बाण जंचता नहीं, सो बंदूक लटका दी। स्वाभाविक है, हर चीज की एक संगति होती है। अब इसमें कहां धनुष-बाण जमेगा! अब इनके पीछे सीता मैया को चलाओ तो उनमें भी बदलाहट करनी पड़ी। सो एड़ीदार जूते पहना दिए, मिनी स्कर्ट पहना दी। जनता नाराज भी हो और झांक-झांक कर भी देखे। भारतीय जनता! भारतीय मन तो बड़ा अदभुत मन है! लोग बिल्कुल झुके जा रहे। किसी से पूछो क्या ढूंढ़ रहे हो? कोई कहता मेरी टोपी गिर गई, कोई कहता मेरी टिकट गिर गई। सभी का कुछ न कुछ गिर गया है। लोग झांक-झांक कर देख रहे हैं। और नाराज भी हो रहे हैं कि यह क्या मजाक है! रामलीला के साथ मजाक!

और जब सीता मैया ने सिगरेट जलाया, तब बात बिगड़ गई। लोग उचक कर मंच पर
चढ़ गए। जिन रामचंद्र जी और सीता मैया के हमेशा पैर छूते थे, उनकी पिटाई कर दी, पर्दा फाड़ डाला। और इसी धूम-धक्का में सीता मैया की स्कर्ट भी फाड़ डाली। अरे ऐसा अवसर कौन चूके! सीता मैया की फजीहत हो गई। ब्लाउज वगैरह फाड़ दिया। वह तो भला हो कि सीता मैया वहां थीं ही नहीं, गांव का एक छोकरा था। सो और गुस्सा आया। सो छोकरे की और पिटाई की कि हरामजादे, शर्म नहीं आती, सीता मैया बना है!
वही रामलीला, वही नाटक। सदियां बीत गईं, हम रुके पड़े हैं। हम डबरे हो
गए हैं।
चरैवेति! चरैवेति! बहो, चलो, गतिमान होओ। छोड़ो अतीत को। ये जंजीरें तोड़ो। यह मूर्च्छा छोड़ो। थोड़ा होश सम्हालो। ध्यान की सारी प्रक्रियाएं होश को सम्हालने की प्रक्रियाएं हैं। ध्यान से ही यह सूत्र पूरा हो सकता है।
कलिः शयानो भवति।
ध्यान से ही तो तुम उठोगे। यह विचारों की तंद्रा तभी तो टूटेगी। यह खोपड़ी में भरा कचरा सदियों-सदियों का, तभी तो जलेगा। ध्यान की अग्नि ही इसे राख कर सकती है।
संजिहानस्तु द्वापरः।
और आंख खुली तो उठ ही बैठोगे। कब तक पड़े रहोगे? जिसकी आंख खुली उसे दिखाई पड़ने लगेगाः फूल खिल गए हैं, सूरज निकल आया, पक्षी गीत गा रहे हैं। अब पड़े रहना मुश्किल हो जाएगा। यह जीवन का आकर्षण और जीवन का सौंदर्य! ये परमात्मा के छुपे हुए ढंग तुम्हें बुलाने के! यह उसका निमंत्रण है। जागे कि सुनाई पड़ा। और तब उठ कर चल पड़ोगे--तलाश में सत्य की; तलाश में सौंदर्य की; तलाश में भगवत्ता की। और जो चल पड़ा उसने पा लिया। क्योंकि जो चल पड़ा वही कृतयुग बन जाता है, वही सतयुग बन जाता है।

सतयुग में कोई पैदा नहीं होता। सतयुग अर्जित करना होता है। पैदा तो
हम सब कलियुग में होते हैं। फिर हममें से जो जाग जाता है, वह त्रेता। जो उठ बैठता है, चल पड़ता है, वह कृत। और जो चलता ही रहता है, वही भगवान है, वही भगवत्ता को उपलब्ध है। इसलिए भगवत्ता को उपलब्ध व्यक्ति के साथ चलना भी मुश्किल हो जाता है। वह चलता ही जाता है।
कितने लोग मेरे साथ चले और ठहर गए! जगह-जगह रुक गए, मील के पत्थरों पर रुक गए! जिसकी जितनी औकात थी, सामर्थ्य थी, वहां तक साथ आया और रुक गया। फिर उसे डर लगने लगा कि और चलना अब खतरे से खाली नहीं। किसी मील के पत्थर को उसने मंजिल बना लिया। और वह मुझसे नाराज हुआ कि मैं भी क्यों नहीं रुकता हूं? मैं भी क्यों और आगे की बात किए जाता हूं?
मेरे साथ सब तरह के लोग चले। जैन मेरे साथ चले, मगर वहीं तक चले जहां
तक महावीर का पत्थर उन्हें ले जा सकता था। महावीर का मील का पत्थर आ गया कि वे रुक गए। और मैंने उनसे कहा, महावीर से आगे जाना होगा। महावीर को हुए पच्चीस सौ साल हो चुके। इन पच्चीस सौ सालों में जीवन कहां से कहां पहुंच गया, गंगा का कितना पानी बह गया! महावीर तक आ गए, यह सुंदर, मगर आगे जाना होगा। उनके लिए महावीर अंतिम थे; वहीं पड़ाव आ जाता है, वहीं मंजिल हो जाती है।
मेरे साथ बौद्ध चले, मगर बुद्ध पर रुक गए। मेरे साथ कृष्ण को मानने वाले चले, लेकिन कृष्ण पर रुक गए। मेरे साथ गांधी को मानने वाले चले, लेकिन गांधी पर रुक गए। जहां उन्हें लगा कि उनकी बात के मैं पार जा रहा हूं, वहां वे मेरे दुश्मन हो गए। मैंने बहुत मित्र बनाए, लेकिन उनमें से धीरे-धीरे दुश्मन होते चले गए। यह स्वाभाविक था। जब तक उनकी धारणा के मैं अनुकूल पड़ता रहा, वे मेरे साथ खड़े रहे।
मेरे साथ तो वही चल सकते हैं, जिनकी धारणा ही चरैवेति-चरैवेति की है;
जो चलने में ही मंजिल मानते हैं; जो अन्वेषण में ही, जोशोध में ही, अभियान में ही गंतव्य देखते हैं। गति ही जिनके लिए गंतव्य है, वही मेरे साथ चल सकते हैं। क्योंकि मैं तो रोज नयी बात कहता रहूंगा। मेरे लिए तो रोज नया है। हर रोज नया सूरज ऊगता है। जो डूबता है वह डूब गया; जो जा चुका जा चुका। बीती ताहि बिसार दे।
लेकिन यहां भी लोग आ जाते हैं, वे प्रश्न लिख कर पूछते हैं--उनके मैं जवाब नहीं देता हूं--कि आपने पंद्रह साल पहले यह कहा था।
पंद्रह साल पहले जिसने कहा था वह कब का मर चुका। मैं कोई वह आदमी हूं
जो पंद्रह साल पहले था? कितने वसंत आए, कितने वसंत गए! कितने दिन ऊगे, कितनी रातें आईं! कितना बीत गया पंद्रह साल में! वे पंद्रह साल पहले को पकड़े बैठे हैं। वे प्रश्न पूछते हैं कि अब हम उसको मानें कि आज जो आप कह रहे हैं उसको मानें?
मैं जो आज कह रहा हूं उसको मानो और वह भी सिर्फ आज कह रहा हूं; कल भी कहूंगा, इसका कोई पक्का मत समझना। मुझे कहीं नहीं ठहरना है। ठहरना मृत्यु है। ठहर-ठहर कर ही तो गंदे डबरे हो गए। कोई मोहम्मद पर ठहर गया, मुसलमान हो गया--एक गंदा डबरा हो गया। अब लाख तुम इसके आस-पास शोरगुल मचाओ, बैंड-बाजे बजाओ, कि कुरान की आयतें पढ़ो, कि कपूर जलाओ, कि लोभान का धुआं उड़ाओ, कि ताज-ताजिए बनाओ, कि वली साहब नचाओ, सब कुछ करो, वह गंदा डबरा वहां है। और उसकी गंदगी छिपती नहीं।
जो कृष्ण के साथ रुक गए वे कब के रुक गए! वहां तो कीचड़ ही कीचड़ है। अब
तो वहां पानी पीने योग्य भी नहीं। उस कीचड़ में अब कुछ केंचुए मिल जाएं तो मिल जाएं, कृष्ण तो न मिलेंगे। और हंस अब उस कीचड़ में नहीं उतरेंगे। और परमहंसों की तो तुम बात ही मत करो। कहां कीचड़ और कहां परमहंस! मगर उस कीचड़ को ही लपेटे जो बैठे हैं, तुमको परमहंस मालूम पड़ते हैं, क्योंकि कीचड़ कृष्ण की है। कृष्ण की राख चढ़ाए जो बैठे हैं, तुम सोचते हो--"अहा, यह रहे महात्मा!"
यह सब धोखाधड़ी है। कृष्ण खुद आज लौट कर आएं तो इनके साथ राजी नहीं हो सकते। कृष्ण तो चरैवेति-चरैवेति को मानेंगे। कृष्ण को तो फिर से गीता कहनी पड़ेगी, जैसे मुझे कहनी पड़ रही है।

मैंने कृष्ण की गीता कह दी है, अब शीघ्र ही मुझे अपनी गीता कहनी पड़ेगी। निश्चित ही उसमें कृष्ण की काफी फजीहत होने वाली है। उसी की तैयारी करवा रहा हूं, धीरे-धीरे राजी कर रहा हूं तुम्हें। अब राम की रामायण फिर से लिखनी पड़ेगी। और राम से ऐसी बातें कहलवानी होंगी जो कि हिंदुओं को बिल्कुल न जंचेंगी। क्योंकि वे तो वही बातें सुनना चाहेंगे जो राम ने पहले कही थीं--चाहे उन बातों का अब कोई संदर्भ हो या न हो, कोई पृष्ठभूमि हो या न हो।
इसलिए मुझसे कभी भूल कर न पूछो कि मैंने पंद्रह साल पहले क्या कहा था। पंद्रह साल की तो बात छोड़ो, पंद्रह दिन पहले क्या कहा था उसकी भी मत पूछो। उसकी भी छोड़ो, कल मैंने क्या कहा था उसकी भी मत पूछो।
पिकासो एक चित्र बना रहा था और उसके एक मित्र ने कहा कि मैं एक बात पूछना चाहता हूं। तुमने हजारों चित्र बनाए, सबसे सुंदर चित्र कौन सा है? पिकासो ने कहा, यही जो अभी मैं बना रहा हूं। और यह तभी तक जब तक बन नहीं गया है; बन गया कि मेरा इससे नाता टूट गया। फिर मैं दूसरा बनाऊंगा। और निश्चित ही दूसरा मेरा श्रेष्ठतम होगा, क्योंकि इसको बनाने में मैंने कुछ और सीखा; इसको बनाने में मेरे हाथ और सधे; इसको बनाने में मेरे रंगों में और निखार आया; इसको बनाने में और सूझ-बूझ जगी।
अब तुम मुझसे पूछते हो मैंने गीता पर यह कहा था पंद्रह साल पहले, कि महावीर पर बीस साल पहले यह कहा था।
तब से मेरे हाथ बहुत सधे। तब से मेरी तूलिका बहुत निखरी। तब से मेरे रंगों में नये उभार आए। उस बकवास को जाने दो। वह बात ऐतिहासिक हो गई। मैं तो आज जो कह रहा हूं, बस उससे जो राजी है वह मेरे साथ है। और उसे यह स्मरण रखना है कि मुझसे राजी होना चरैवेति-चरैवेति से राजी होना है। कल मैं आगे चल पडूंगा, तब तुम यह न कह सकोगे कि कल ही तो हमने यह तंबू गाड़ा था और अब उखाड़ना है! और हम तो इस भरोसे में गाड़े थे कि आ गए!
मैं तुम्हारे सब भरोसे तोड़ दूंगा। मैं तो तुम्हें खानाबदोश बनाना चाहता हूं।
"खानाबदोश" शब्द बड़ा प्यारा है। खाना का अर्थ होता है घर; जैसे मयखाना। खाना का अर्थ होता है घर; दवाखाना। बदोश का अर्थ होता है कंधे पर। "दोश" यानी कंधा, बदोश यानी कंधे पर। खानाबदोश बड़ा प्यारा शब्द है। इसका मतलब--जिसका घर कंधे पर; जो चल पड़ा है, चलता ही रहता है, चलता ही जाता है, जो रुकता ही नहीं सत्य की इस अनंत यात्रा में। और इसका सौंदर्य यही है कि यह यात्रा अनंत है, कहीं समाप्त नहीं होती, इसका पूर्ण-विराम नहीं आता। जिस दिन पूर्ण-विराम आ जाएगा उस दिन फिर करोगे क्या? फिर जीवन व्यर्थ हुआ। फिर आत्महत्या के सिवाय कुछ भी न सूझेगा।
इसलिए जिन्होंने तुम्हें धारणा दी है कि मोक्ष आ गया कि सब आ गया, कि मुक्ति आ गई कि सब आ गया, कि समाधि आ गई कि सब आ गया, उन्होंने तुम्हें गलत धारणा दी है। उन सबने तुम्हें कहीं ठहर जाने का मुकाम बता दिया है।
और तुम सब ठहर जाने को इतने आतुर हो, चलना ही नहीं चाहते तुम, पहली तो बात। तुम कलि में ही रहना चाहते हो। कलिः शयानो भवति। कोई कह दे कि शय्या ही, जहां तुम सो रहे हो, यही जगह तो है! देखो न विष्णु शयन कर रहे हैं शेषनाग पर! ये विष्णु सदा से कलियुग में हैं। इनकी नींद नहीं टूटी। और वह जो नाग है, वह हजार-हजार फनों से उनकी रक्षा कर रहा है। बड़ी जहरीली रक्षा है यह। वह इन्हें उठने भी नहीं देगा। वे उठे कि उसने फुफकारा--"कहां जाते? लेट रह! बच्चा कहां जाता है?" यह शय्या कोई छोड़ने वाली नहीं है। और अगर किसी तरह इनसे बच भी जाए तो लक्ष्मी मैया हैं, वे पैर दबा रही हैं।
सावधान उन लोगों से जो पैर दबाते हैं, क्योंकि दबाते-दबाते वे गर्दन दबाएंगे। आखिर वे भी तो आगे बढ़ेंगे न--चरैवेति! चरैवेति! कोई पैर पर ही रुके रहेंगे? बचना हो तो पैर ही दबाने से बचना। इसलिए मैं किसी को पैर नहीं दबाने देता। क्योंकि मैं जानता हूं, पैर दबाने वाला धीरे-धीरे आगे बढ़ेगा और अंततः गर्दन पर आएगा। सब सेवक गर्दन पर आ जाते हैं। सभी सेवक नेता हो जाते हैं। वही गर्दन पर आ जाना है। वे कहते हैं, "देखो हमने कितनी देश-सेवा की! अब क्या जरा तुम्हारी गर्दन न दबाएं? तो फिर देश-सेवा किसलिए

की? अरे इतनी सेवा की, कुछ तो पुरस्कार दो! इतने पैर दबाए, अब थोड़ी तो गर्दन भी दबाने दो! अब यह मजा हम ही लेंगे, कोई दूसरा तो नहीं ले सकता। पैर हमने दबाए और गर्दन कोई और दबाए, यह कभी न होने देंगे।" और जो पैर दबाते-दबाते गर्दन तक आ गया है, उसको तुम रोक भी न पाओगे। तुम रोकने का समय पहले ही चूक गए।
दो शिष्य एक गुरु के पैर दबा रहे थे। दोपहर का वक्त, गरमी के दिन। गुरु रहे होंगे कोई गुरुघंटाल। असली गुरु पैर नहीं दबवाता। असली गुरु क्यों पैर दबवाएगा? और लंगड़ों से क्या पैर दबवाना? अंधों से क्या पैर दबवाना? सोए हुओं से क्या पैर दबवाना? ये तो कुछ उपद्रव करेंगे ही। तो गुरु तो नहीं रहे होंगे, गुरुघंटाल रहे होंगे। दोनों पैर दबा रहे थे। दो ही शिष्य थे उनके। सो हर चीज में बंटवारा करना पड़ता था। एक ने बायां पैर लिया था, एक ने दायां। गुरु ने करवट बदली। बायां पैर दाएं पैर पर चढ़ गया। जिसका दायां पैर था उसने कहा, "हटा ले अपने बाएं पैर को! अगर मेरे पैर पर तेरा पैर चढ़ा तो भला नहीं।"
लेकिन जिसका पैर चढ़ गया था उसने कहा, "अरे देख लिए ऐसे धमकी देने वाले! किसकी हिम्मत है जो मेरे पैर को नीचे उतार दे? जब चढ़ ही गया तो चढ़ ही गया। चढ़ेगा! कर ले जो तुझे करना हो!"
उसने कहा, "देख, हटा ले! मान जा!" वह उठा लाया लट्ठ। उसने कहा, "वह दुचली बनाऊंगा तेरे पैर की... ।"
मगर दूसरा भी कुछ पीछे तो छूट जाने वाला नहीं था। सोए हुए आदमियों के साथ यही तो खतरा है। दूसरा तलवार उठा लाया। उसने कहा, "हाथ लगा, लकड़ी चला मेरे पैर पर, और देख तेरे पैर की क्या गति होती है! एक ही झटके में फैसला कर दूंगा।"
इस आवाज में, शोरगुल में गुरु की नींद खुल गई। सुना आंखें बंद किए-किए
कि यह मामला बिगड़ा जा रहा है। उसने कहा, "भाइयो, जरा ठहरो! यह भी तो ख्याल करो कि पैर मेरे हैं।"
उन्होंने कहा, "आप शांत रहिए! आपको बीच-बीच में बोलने की कोई जरूरत नहीं। जब बंटवारा हो चुका तो हो चुका। यह इज्जत का सवाल है। आप शांत रहो।" यही हाल विष्णु का होगाः इधर सांप फनफना रहा, उधर लक्ष्मी मैया पैर दबाते-दबाते जमाने हो गए, गर्दन तक तो पहुंच ही गई होंगी। वह गर्दन दबा रही होंगी। विष्णु उठ भी नहीं सकते, वे कलि-काल में ही हैं। और वही तुम्हारे अवतार बनते हैं। वही कभी राम बन जाते, कभी परशुराम बन जाते। वही कभी कृष्ण बन जाते। उनका धंधा एक ही है। यूं समझो कि असलियत में तो वे वहीं रहते हैं अपनी शय्या पर, पता नहीं कौन उनकी जगह नाटक कर जाता है! यह सब नाटक-चेटक चल रहा है। यह एक ही आदमी भारत की छाती पर चढ़ा हुआ है, और वह शय्या पर सो रहा है। कलियुग जारी है, सदियों से जारी है।
इसको तोड़ने का समय आ गया है। उठो! निद्रा छोड़ कर बैठो। उठ कर खड़े हो जाओ। और फिर चलो। जो चल पड़ता, वही कृतयुग बन जाता है। इसलिए मैं तुम्हारे इन सारे धर्मों की धारणाओं का स्पष्ट विरोध करता हूं, जो कहते हैं आज कोई तीर्थंकर नहीं हो सकता। तीर्थंकर होने का किसी समय से कोई संबंध नहीं। जैन कहते हैंः "तीर्थंकर चौबीस ही हो सकते हैं, वे हो गए।"
अगर चौबीस ही हो सकते हैं, समझ लो, यह भी मान लो। एक जैन मुनि से मेरी बात हो रही थी। वे कहते थे, चौबीस ही हो सकते हैं। मैंने कहा, "चलो यह भी मान लो। तो जो चौबीस हुए, यही वे चौबीस थे इसका कोई प्रमाण है? इनमें हो सकता है एक भी असली न हो और अभी चौबीस होने को हों। प्रमाण क्या है इनके चौबीस होने का? यह भी मान लो कि चौबीस ही हो सकते हैं, चलो कौन झगड़ा करे, चौबीस-पच्चीस कोई भी संख्या चलेगी। मगर ये ही चौबीस थे, महावीर ही चौबीसवें थे और ऋषभदेव ही पहले थे, यह क्या पक्का?"
ऋग्वेद में ऋषभदेव का नाम है, तो जैन घोषणा करते हैं कि हमारा धर्म ऋग्वेद से पुराना है। मगर हिंदू, दयानंद जैसे व्यक्ति यह मान नहीं सकते। वे ऋषभदेव को ऋषभदेव पढ़ते ही नहीं। वे पढ़ते हैं वृषभदेव! सांड! नंदीबाबा! वे ऋषभदेव को ऋषभदेव मानते ही नहीं, वे वृषभदेव मानते हैं। अब वृषभदेव तुम्हारे पहले तीर्थंकर थे? यह जैन मानने को राजी न होंगे। और क्या सबूत

कि जो प्रथम था वह कोई छाती पर लिखवा कर आया था? कोई सर्टिफिकेट, प्रमाण-पत्र लेकर आया था?
मेरी आलोचना निरंतर अखबारों में की जाती है कि मैं स्व-घोषित भगवान हूं। मैं तुमसे पूछता हूं, तुम्हारा कौन सा भगवान था जो सर्टिफिकेट लेकर आया था? अगर मैं स्व-घोषित हूं, तो कौन था जो स्व-घोषित नहीं था? आखिर महावीर का दावा खुद का दावा था। महावीर के समय में आठ और लोग थे जो दावेदार थे। यह और बात है कि वे आठों हार गए महावीर से तर्क में। मगर इससे यह सिद्ध नहीं होता कि जो तर्क में जीत गया था, जो वकालत में जीत गया था, वह असली था। और तर्क में ही जीतना हो तो मुझे कोई अड़चन है? अगर तर्क ही प्रमाणित हो सकता हो, तब तो मेरी जीत सुनिश्चित है। तर्क का तो बखिया मैं अच्छी तरह उखेड़ सकता हूं, इसमें मुझे कोई अड़चन नहीं है। तुम्हारे बड़े से बड़े तार्किकों की धज्जी उड़ाई जा सकती है, इसमें कुछ भी नहीं है। इनको चारों खाने चित्त करने में कोई अड़चन नहीं, क्योंकि इनके तर्क भी पिटे-पिटाए हैं और पुराने हैं। अब तर्क नये दिए जा सकते हैं, जिनका इनको पता भी नहीं था, जिनका इनको होश भी नहीं था, जिनको उठाने की इनकी हिम्मत भी नहीं हो सकती। अब कौन कहेगा कि विष्णु महाराज कलियुग में जी रहे हैं? किसी ने आज तक नहीं कहा। मगर साफ है। शय्या पर--जब देखो तब शय्या पर लेटे हुए हैं। जिंदा भी हैं कि मर गए, यह भी शक है। और सांप फुफकार रहा है, मर ही चुके होंगे। कब तक जिंदा रहोगे सांप पर? और सोना, यह भी कोई ढंग है? अरे उठो भी, नहाओ-धोओ भी, कम से कम दतौन वगैरह करो, कुछ चाय-नाश्ता करो, कुछ भजन-पूजन करो, कुछ तो करो! यह मुर्दे की तरह पड़े हो; यह आसन न हुआ, शवासन हो गया।
कौन लेकर आया था प्रमाण-पत्र? महावीर के समय में संजय वेलट्ठिपुत्त था, जो कह रहा था, "मैं चौबीसवां तीर्थंकर हूं।" उसका कसूर अगर कोई था तो एक ही था कि वह आदमी जरा दीवाना था और मस्त था। महावीर जैसा नियमबद्ध नहीं था, इसलिए भीड़-भाड़ इकट्ठी न कर पाया। मस्तों का वह दुर्भाग्य है। उनकी मस्ती के कारण भीड़ उनके पास इकट्ठी नहीं हो सकती, कुछ मस्त इकट्ठे हो सकते हैं। संजय वेलट्ठिपुत्त जोरदार बातें कहता था। जैसे महावीर ने कहा कि सात नर्क होते हैं। उसने कहा, "गलत! ये सात तक ही गए होंगे। अरे सात सौ नर्क हैं, मैं सब पूरी आखिरी छानबीन कर आया। और सात सौ ही स्वर्ग हैं। ये सातवें स्वर्ग तक गए होंगे, इसलिए बेचारे सातवें तक की बातें करते हैं। जो जहां तक गया वहां तक की बात करता है। मैंने ऊपर से नीचे तक सब छानबीन कर डाली है।"
यह मस्ती में कही हुई बात है। यह मजाक कर रहा है वह कि क्या बकवास लगा रखी है सात की! और फिर सात की ही बात हो तो सात सौ की क्यों न हो! अरे फिर कंजूसी क्या?
संजय वेलट्ठिपुत्त मस्ताना आदमी था। मक्खली गोशालक दावेदार था कि मैं असली चौबीसवां तीर्थंकर हूं! वह महावीर का पहले शिष्य था। फिर देखा उसने, जब महावीर हो सकते हैं चौबीसवें तीर्थंकर तो मैं क्यों नहीं हो सकता! सो अलग हो गया और उसने घोषणा कर दी। महावीर को स्वभावतः नाराजगी तो हुई कि मेरा ही शिष्य, बारह साल मेरे साथ रहा और मेरी ही बातें करता है और मेरे ही खिलाफ दावेदारी करता है! महावीर उस गांव गए जहां मक्खली गोशालक ठहरा हुआ था। उस धर्मशाला में ठहरे और मक्खली गोशालक से कहा कि मैं मिलना चाहता हूं। मक्खली गोशालक मिला। उन्होंने पूछा कि तू मेरा शिष्य था! उसने कहा, "इससे ही सिद्ध होता है कि आप अज्ञानी।" महावीर ने कहा, "इससे कैसे सिद्ध होता है कि मैं अज्ञानी?" गोशालक ने कहा, "आप पहचान ही नहीं पाए। यह देह वही है, मगर वह आत्मा तो गई। इसमें चौबीसवें तीर्थंकर की आत्मा प्रविष्ट हो गई, जो तुम्हारी शिष्य कभी नहीं रही। तुम अभी तक देह पर अटके हो। तुम्हें देह ही दिखाई पड़ रही है। अरे आत्मा को देखो! यह क्या अज्ञान!" महावीर कहते रहे, "यह झूठ बोल रहा है।"
और लोगों को भी बात जंची कि यह आदमी अजीब बातें कर रहा है, कि इसकी आत्मा तो जा चुकी और चौबीसवें तीर्थंकर की आत्मा इसमें प्रविष्ट कर गई! मगर वह भी मस्त किस्म का आदमी था, उसके शिष्य भी मस्तमौला थे, इसलिए भीड़-भाड़ इकट्ठी नहीं हो सकी। मगर बात तो उसने मजे की कही। वह भी मजाक में ही कही थी।

ऐसे और भी लोग थे। अजित केशकंबली था। खुद गौतम बुद्ध थे। गौतम बुद्ध
ने इनकार किया है कि महावीर तीर्थंकर हैं, सर्वज्ञ हैं। कैसे सर्वज्ञ? क्योंकि बुद्ध ने कहा, "मैंने उन्हें ऐसे घरों के सामने भिक्षा मांगते देखी जिस घर में वर्षों से कोई नहीं रहता। ये क्या खाक सर्वज्ञ हैं! इनको यह भी पता नहीं कि यह घर खाली है, उसके सामने भिक्षा मांगने खड़े हैं! जब पड़ोस के लोग कहते हैं कि वहां कोई रहता ही नहीं, आप बेकार खड़े हैं, तब ये आगे हटते हैं। और ये तीन काल के ज्ञाता और इनको इतना भी ज्ञान नहीं कि यह घर खाली है! दरवाजे के पीछे देख नहीं पाते और तीन काल देख रहे हैं! त्रिलोक इनकी आंखों के सामने है! ये कैसे तीर्थंकर? सुबह उठ कर चलते हैं रास्ते पर अंधेरे में, कुत्ते की पूंछ पर पैर पड़ जाता है; जब कुत्ता भौंकता है तब पता चलता है कि पूंछ पर पैर पड़ गया।"
ये बुद्ध ने महावीर के संबंध में बातें कही हैं। तो कौन तीर्थंकर है? किसके पास दावा है? किसके पास सर्टिफिकेट है? या कि तुम सोचते हो कि कोई तीर्थंकर, कोई अवतार वोट से तय होता है? तो किसको वोट मिली थी? और वोट अगर मिलतीं तो ये सब हार गए होते। बुद्ध को कितनी वोट मिलतीं? जीसस को कितनी वोट मिलतीं? मोहम्मद को कितनी वोट मिलतीं?
आज की संख्या मत गिनना। आज तो करोड़ों की संख्या है जीसस के पीछे। कोई
एक अरब आदमी ईसाई हैं। मगर जीसस को जब सूली लगी तो एक भी शिष्य वहां मौजूद नहीं था, सब भाग खड़े हुए। एक शिष्य ने पीछा करने की कोशिश की थी रात में, तो जीसस ने कहा था कि देख, मत पीछे आ। मैं तुझे जानता हूं। सुबह मुर्गा बोले, इसके पहले तीन बार तू मुझे इनकार करेगा। लेकिन उसने कहा, "कभी नहीं, कभी नहीं! मैं और इनकार करूं? मेरा समर्पण पूरा है!"
वह चल पड़ा। दुश्मन जीसस को पकड़ कर चले, जंजीरें बांध कर चले। रात थी अंधेरी, मशालें लेकर चले। और वह भी उस भीड़ में सम्मिलित हो लिया। लेकिन भीड़ कोशक हुआ--यह आदमी कुछ अपरिचित मालूम पड़ता है। यह अपने वाला नहीं। और कुछ संदिग्ध दिखता है, कुछ डरा-डरा भी, कुछ भयभीत भी, कुछ आह्लादित भी नहीं मालूम होता कि जीसस पकड़ लिए गए हैं, सब प्रसन्न हो रहे हैं कि अब खात्मा हो गया इस आदमी का, यह उपद्रव मचा रहा था। सिर्फ यह आदमी उदास दिखता है। पकड़ लिया कि तुम कौन हो? क्या तुम जीसस के शिष्य हो? उसने कहा कि नहीं, मैं तो एक परदेसी हूं। जेरुसलम की तरफ जा रहा था। रात अंधेरी है, तुम्हारे पास मशालें हैं, इसलिए साथ हो लिया। और तुम भी जेरुसलम जा रहे हो, सोचा कि ठीक है, रास्ते में किस-किस से पूछूंगा! अंधेरी रात है, कोई मिले न मिले।
जीसस पीछे लौटे और उन्होंने कहा, "देख, अभी मुर्गे ने बांग भी नहीं दी!" और यह घटना तीन बार घटी; मुर्गे के बांग देने के पहले तीन बार घटी। इनसे वोट मिल सकता था? और ये दस-बारह लोग थे कुल, उनमें से ही एक ने तीस रुपये में जीसस को बेचा था--जुदास ने। कितने लोग उन्हें वोट देने जाते? कौन हिम्मत करता वोट देने की, जो मुर्गे के बांग देने के पहले इनकार कर दिए थे! और जीसस के पास कौन सा सर्टिफिकेट था परमात्मा का कि वे ही ईश्वर के इकलौते बेटे हैं?
मुझ पर आलोचना की जाती है कि मैं स्व-घोषित भगवान हूं।
मैं तुमसे कहता हूं, इसके सिवाय तो कोई उपाय ही नहीं। कभी नहीं रहा। आखिर आंख वाला ही घोषणा कर सकता है कि मुझे प्रकाश दिखाई पड़ रहा है। अंधों से वोट लेनी पड़ेगी? कि अंधों का सर्टिफिकेट चाहिए पड़ेगा?
मैं जब विश्वविद्यालय से उत्तीर्ण हुआ तो मैं प्रथम कोटि में विश्वविद्यालय में प्रथम आया था। स्वभावतः मुझे निमंत्रण मिला शिक्षा- मंत्रालय से कि अगर मैं चाहूं तो मेरे लिए पहला अवसर है प्रोफेसर हो जाने का। मैं गया।
मैंने कहा, "ठीक, आपका निमंत्रण आया, मैं राजी हूं।"
उन्होंने कहा, "लेकिन कागज-पत्र आप सब ले आए हैं?"
मैंने कहा, "यह रहा सर्टिफिकेट जो जाहिर करता है कि मैं प्रथम श्रेणी में प्रथम आया हूं। और क्या चाहिए?"
उन्होंने कहा, "चरित्र का प्रमाण-पत्र चाहिए।"
मैंने कहा, "यह जरा मुश्किल है।"

उन्होंने कहा, "क्यों इसमें क्या मुश्किल है? क्या आप अपने विश्वविद्यालय के उपकुलपति का चरित्र का प्रमाण-पत्र नहीं ला सकते?" मैंने कहा, "ला सकता हूं, लाने में कोई अड़चन नहीं। आ रहा था तो उन्होंने मुझसे कहा था, लेकिन मैंने इनकार किया। क्योंकि मैं उनको चरित्र का सर्टिफिकेट नहीं दे सकता तो उनसे मैं कैसे चरित्र का सर्टिफिकेट लूं? शराबी-कबाबी, वेश्यागामी--कौन से गुण हैं जो उनमें नहीं हैं! उनसे मैं क्या चरित्र का सर्टिफिकेट लूं? मैंने उनसे पूछा, आप सोचते हैं आपसे मैं चरित्र का सर्टिफिकेट ले सकता हूं? पहले आप यह तो पूछो कि मैं आपको चरित्र का सर्टिफिकेट दे सकता हूं? सो बात वहीं बिगड़ गई।"
शिक्षा-मंत्री ने कहा, "फिर जरा मुश्किल आएगी। फिर क्या किया जाए?"
मैंने कहा, "मैं ही चरित्र का सर्टिफिकेट लिख सकता हूं अपने बाबत।" उन्होंने कहा, "ऐसा नियम नहीं।"
तो मैंने कहा, "आप जिसके दस्तखत कहें उसके दस्तखत कर सकता हूं।"
उन्होंने कहा, "यह कैसे होगा?"
मैंने कहा, "यह आप कार्बन-कापी समझें। और जिसके दस्तखत मैं करता हूं उससे दस्तखत मैं ले लूंगा, मूल कापी मेरे पास रहेगी। आप मूल कापी चाहेंगे तो मूल कापी आपको लाकर दे दूंगा।"
तो मेरे प्रोफेसर थे डाक्टर एस.के.सक्सेना, उनके नाम से मैंने सर्टिफिकेट लिख दिया। शिक्षा-मंत्री थोड़े हिचके-बिचके, मगर मेरा रंग-ढंग देख कर उनको समझ में आ गया कि इस आदमी से झंझट लेना ठीक भी नहीं। सो उन्होंने सर्टिफिकेट रख लिया, मुझे नौकरी भी मिल गई। मैंने डाक्टर एस.के.सक्सेना से जाकर कहा कि यह मेरा सर्टिफिकेट है, आपके दस्तखत मैंने किए हैं, आप इसकी मूल प्रति बना दें। उन्होंने कहा, "जिंदगी हो गई मेरी सर्टिफिकेट लिखते, मूल प्रति पहले बनाई जाती है, फिर उसकी सर्टिफाइड कापी होती है।"
मैंने कहा, "मेरे साथ कोई नियम काम नहीं करता। आपको एतराज अगर हो जो मैंने अपने बाबत लिखा है इसमें, तो आप मत मूल प्रति दें। आप सर्टिफिकेट पढ़ लें।"
सर्टिफिकेट में मैंने जो लिखा था वह शिक्षा-मंत्री ने भी पढ़ा नहीं था, सिर्फ रख लिया था। जब डाक्टर एस.के.सक्सेना ने उसको पढ़ा, कहने लगे कि यह तुमने क्या लिखा है कि मैं परम अज्ञानी हूं, कि मेरे चरित्र का कोई ठिकाना नहीं, कि मैं आज कुछ हूं कल कुछ हूं, मैं भरोसे का आदमी नहीं! यह चरित्र का सर्टिफिकेट है?
मैंने कहा, "अंधों को देना है, अंधों से लेना है। आंख वाला और करे क्या? तुम सिर्फ दस्तखत करो। न शिक्षा-मंत्री ने पढ़ा, न तुम पढ़ो।" उन्होंने जल्दी से दस्तखत किए। उन्होंने कहा कि तुम मुझसे कहते, मैं सुंदर सर्टिफिकेट लिखता। मैंने कहा, "तुमसे मैं सर्टिफिकेट ले सकता नहीं था। वही अड़चन। तुम भी जानते हो कि मैं तुमसे सर्टिफिकेट नहीं ले सकता।" उन्होंने कहा, "वह मैं जानता हूं। सच में मैं अधिकारी भी नहीं हूं।"
वे आदमी बड़े ईमानदार थे। वे इतने ईमानदार आदमी थे कि उनके घर मैं ठहरता था तो वे सिगरेट भी नहीं पीते थे, शराब भी नहीं पीते थे।
मैंने उनसे कहा, "यह बात अनाचार की है। इससे मुझे कष्ट होता है। मैं आपके घर ठहरना बंद कर दूंगा। क्योंकि मैं किसी में दमन नहीं लाना चाहता। यह दमन है। आप दिन भर सिगरेट पीते हैं। मेरी मौजूदगी में आप बिल्कुल सिगरेट नहीं पीते, तकलीफ होती होगी। यह पाप मैं सिर पर न लूंगा। और सिगरेट पीने में हर्ज क्या है? अरे साल, दो साल पहले जल्दी मरोगे। सो ऐसे भी जीकर क्या कर रहे हो? और कई लोग कतार में खड़े हैं जो राह देख रहे हैं, तुम मरो तो वे प्रधान हो जाएं। तुम जब तक न मरो तब तक वे विभाग के अध्यक्ष नहीं हो सकते। सो जी भर कर पीओ। शराब में क्या हर्जा है? यूं ही बेहोश हो, अब और क्या बेहोश होओगे? और बेहोश आदमी से और क्या अपेक्षा की जा सकती है? क्या ध्यान पीएगा? तुम मेरा लाज-संकोच करोगे तो मैं यहां नहीं आऊंगा, क्योंकि मेरा लाज-संकोच दमन बने तो जिम्मेवारी मेरी हो जाती है। हां, तुम्हारी समझ में आ जाए कि यह मूर्खता है और छूट जाए, तब बात और। तब फिर मैं रहूं या न

रहूं तुम्हारे घर में, फिर तुम्हें सिगरेट नहीं पीनी चाहिए, शराब नहीं पीनी चाहिए। मेरी मौजूदगी के कारण, तो दमन होगा।"
इसलिए वे कहने लगे, यह तो मैं जानता हूं कि मेरे प्रमाण-पत्र का कोई अर्थ नहीं। मगर इसी तरह के प्रमाण-पत्रों के अर्थ समझे जा रहे हैं।
जो लोग मुझसे पूछते हैं स्व-घोषित भगवान आप कैसे, उनसे मैं कहना चाहता हूंः जिसने भगवत्ता जानी वही घोषणा करेगा। बुद्ध ने स्वयं घोषणा की कि मैं परम निर्वाण को उपलब्ध हुआ हूं। किसका और सर्टिफिकेट है? मोहम्मद ने खुद घोषणा की कि मेरे ऊपर परमात्मा की किताब उतरी है। किसका और सर्टिफिकेट है? कोई गवाह है?
हालत तो यह है कि खुद मोहम्मद को भी शक हुआ था कि यह किताब परमात्मा की मुझ पर उतर रही है या मैं पागल हो रहा हूं! और जब किताब उतरी तो वे घर भागे हुए आए और उन्हें बुखार चढ़ गया। यह मोहम्मद की सादगी, सरलता का सबूत है। उन्होंने अपनी पत्नी से कहा कि जितनी भी दुलाइयां हों घर में, सब मेरे ऊपर डाल दे। मुझे कुछ हो गया है। या तो मैं सन्निपात में हूं, क्योंकि मुझसे ऐसी बातें निकल रही हैं जो मेरी नहीं हैं, मैंने कभी सोची नहीं हैं। ऐसी सुंदर आयतें मेरे भीतर गूंज रही हैं, ऐसे सुंदर गीत, जो निश्चित ही मेरे नहीं हैं, जिन पर मेरा कोई हस्ताक्षर नहीं है। तो या तो मैं सन्निपात में हूं कि मुझे कुछ का कुछ हो रहा है, अल्ल-बल्ल, जो मेरे वश के बाहर है; और या फिर मैं कवि हो गया हूं, जो कि और भी बदतर है। क्योंकि सन्निपात से तो आदमी का इलाज है, कवि हो गए तो फिर कोई इलाज ही नहीं। जहां न पहुंचे शशि, वहां पहुंचे कवि! इनका तो कुछ हिसाब ही नहीं है।
लेकिन आयशा, उनकी पत्नी ने कहा कि मुझे कुछ कहो, क्या हो रहा है तुम्हारे भीतर? मोहम्मद ने अपने पहली आयतें सुनाईं। आयशा ने कहा, "तुम भूल में हो।"
आयशा उनसे उम्र में बहुत बड़ी थी। इसलिए कभी-कभी अपनी उम्र से ज्यादा उम्र की स्त्री से शादी करना फायदे की बात है। काफी बड़ी थी। मोहम्मद छब्बीस साल के थे, आयशा चालीस साल की थी। अनुभवी थी। मां की उम्र की थी। उसने आयतें सुनीं। उसने कहा, "इससे सुंदर सूत्र तो मैंने कभी सुने नहीं! न तो तुम सन्निपात में हो, न तुम कवि हो। तुम पर परमात्मा के वचन उतरे हैं। ये वचन इतने प्यारे हैं कि परमात्मा के ही हो सकते हैं।"
उसने भरोसा दिलाया, तब कहीं मोहम्मद को भरोसा आया। आयशा उनकी पहली शिष्या थी--पहली मुसलमान। उसने ही सहारा दिया तो मोहम्मद हिम्मत जुटा पाए औरों से कहने की। मगर बहुत सम्हल-सम्हल कर कदम चले। लेकिन प्रमाण क्या था? भीड़-भाड़ ने तो मोहम्मद को माना नहीं। जगह-जगह से उखाड़े गए। एक-एक गांव से भगाए गए। जिंदगी भर लोग उनके मारने के पीछे पड़े रहे। इनसे तुम वोट ले सकते थे?
मेरे जैसे व्यक्ति को तो अपनी घोषणा स्वयं ही करनी होगी। और मेरे जैसे व्यक्ति को पचाना केवल थोड़े से छाती वाले लोगों की बात हो सकती है। इसलिए मैं तुमसे कहता हूंः यह सूत्र मैंने ही कहा होगा। यह सूत्र और कौन कहेगा? यह सूत्र बिल्कुल मेरे हृदय की आवाज है। यह मेरी आयत है!
कलिः शयानो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन्।।
चरैवेति। चरैवेति।।

दूसरा प्रश्नः मैं आपके पुराने परिचित स्वर्गीय प्रोफेसर लाली प्रसाद श्रीवास्तव, जिन्हें आप लल्लू बाबू के नाम से पुकारते थे, उनका पुत्र हूं। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आप धर्मों के खिलाफ क्यों बोलते हैं?

प्रोफेसर काली प्रसाद श्रीवास्तव, मुझे भलीभांति याद है लल्लू बाबू की। और मुझे याद है तुम्हारी भी, तब तुम छोटे थे। मगर मैंने यह न सोचा था कि तुम अब भी उतने ही, वहीं के वहीं, वही छोटा पाजामा पहने हुए हो, वही कमीज, अभी तक वहीं बंधे होओगे। तुम्हें शायद पता हो या न हो, भूल गए भी होओ अब यह

हो सकता है, लल्लू बाबू के बेटे थे तुम, इसलिए तुम्हें हम "लल्लू के पट्ठे" कहते थे। अब मतलब तुम समझ लो कि लल्लू के पट्ठे का मतलब क्या होता है! मतलब लल्लू को कोष्ठक में तुम पढ़ लेना कि क्या कहते हैं। तुम अभी भी वहीं मालूम होते हो। प्रश्न भी पूछा तो क्या पूछा कि आप धर्मों के खिलाफ क्यों बोलते हैं!
अभी-अभी बोला, वह धर्म के खिलाफ था? धर्मों के खिलाफ बोलता हूं, क्योंकि धर्म के पक्ष में हूं मैं। धर्म का बहुवचन हो ही नहीं सकता। धर्म का एकवचन ही हो सकता है। इसलिए धर्म पर कोई विशेषण नहीं हो सकते--हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, बौद्ध। इनके खिलाफ मैं बोलूंगा। और इनके खिलाफ मैं अपनी छुरी पर रोज धार रखता हूं। खाली समय में वही काम करता हूं--छुरी पर धार रखता हूं। ये विशेषण काट डालने हैं। तब जो बच रहेगा, वह धर्म होगा, धार्मिकता होगी। धर्मों के खिलाफ बोलता हूं, क्योंकि धर्म से मुझे प्रेम है। और धर्मों ने धर्म की हत्या कर दी।
ये मुसलमां है, वो हिंदू, ये मसीही, वो यहूदइस पे ये पाबंदियां हैं और
उस पर ये कयूद
पाबंदियां और नियमों के बंधन, ये मनुष्य को आध्यात्मिक रूप से गुलाम बनाते हैं।
ये मुसलमां है, वो हिंदू, ये मसीही, वो यहूदइस पे ये पाबंदियां हैं और
उस पर ये कयूदशेख-औ-पंडित ने भी क्या अहमक बनाया है हमेंछोटे-छोटे तंग खानों में बिठाया है हमें
खूब मूरख बनाए गए हैं लोग, अहमक बनाए गए हैं लोग।
शेख-औ-पंडित ने भी क्या अहमक बनाया है हमें
अहमक यानी लल्लू के पट्ठे!
छोटे-छोटे तंग खानों में बिठाया है हमेंकस्रे-इंसानी पे जुल्मो-जहल बरसाती हुईझंडियां कितनी नजर आती हैं लहराती हुई
मानवता के महलों पर... ।
कस्रे-इंसानी पे जुल्मो-जहल बरसाती हुई
अत्याचार और मूढ़ता को बरसाती हुई।
झंडियां कितनी नजर आती हैं लहराती हुई
और ये सब झंडियां झूठी हैं। ये झंडियां सब राजनैतिक हैं। झंडियां धोखे हैं, झंडे धोखे हैं; झंडों के भीतर जो असलियत है वे डंडे हैं। डंडों को छिपाने के लिए झंडों का उपयोग किया जाता है। और झंडों की चिंदियों में लोग कटते हैं और मरते हैं। जमीन लहूलुहान हो गई है इन्हीं धर्मों के नाम पर। और फिर भी तुम पूछते हो कि मैं धर्मों के खिलाफ क्यों बोलता हूं! अब भी तुम पूछते हो कि मैं धर्मों के खिलाफ क्यों बोलता हूं!
जरा लौट कर धर्मों का अतीत तो देखो। धर्मों ने किया क्या है? आदमी को दिया क्या है? आदमी से छीना है। आदमी को रौंदा है।
कस्रे-इंसानी पे...
यह जो आदमीयत का महल है, इसकी हालत खंडहर की हो गई है।
कस्रे-इंसानी पे जुल्मो-जहल बरसाती हुईझंडियां कितनी नजर आती हैं लहराती हुईकोई इस जुल्मत में सूरत ही नहीं है नूर की
यह कैसा अंधेरा है जो धर्मों ने पैदा किया है, कि इसमें कोई सूरत ही नजर नहीं आती कि आलोक पैदा हो सके! कोई एकाध इस अंधेरे को पैदा करने वाला हो तो ठीक। तीन सौ धर्म हैं दुनिया में, तीन सौ धर्मों के तीन हजार संप्रदाय हैं, तीन हजार संप्रदायों के कोई तीस हजार उप-संप्रदाय हैं। ये सारे के सारे लोग अंधेरे को बढ़ा रहे हैं, घटा नहीं रहे हैं। और जब भी कोई उजाले की बात करता है, ये सारे अंधेरे के पक्षधर उसकी हत्या के इरादे करने लगते हैं, उसको मिटा देना चाहते हैं।
कोई इस जुल्मत में सूरत ही नहीं है नूर कीमुहर हर दिल पे लगी है इक न
इक दस्तूर कीघटते-घटते महरे-आलमताब से तारा हुआ
यह आदमी की क्या हालत हो गई! सूरज की तरह था, विराट! वह घटते-घटते छोटा
सा टिमटिमाता तारा रह गया है। अब तो तारा भी नहीं, अब तो बस एक अंधेरा, काली स्याही का धब्बा।

घटते-घटते महरे-आलमताब से तारा हुआआदमी है मजहबो-तहजीब का मारा हुआ
इन दो चीजों ने आदमी को मारा है--धर्म ने और तुम्हारी तथाकथित सभ्यता, संस्कृति। ये तुम्हारे अहंकार--मेरा धर्म, मेरी सभ्यता, मेरी संस्कृति, मेरा राष्ट्र, मेरी जाति, मेरा कुल!
आदमी है मजहबो-तहजीब का मारा हुआकुछ तमद्दुन के खलफ कुछ दीन के फर्जन्द हैं
कुछ संस्कृति के पुत्र हैं--कुपुत्र कहने चाहिए--और कुछ दीन के फर्जन्द हैं, और कुछ धर्म के। और ये धर्म और संस्कृति के बेटे एक-दूसरे की हत्या में संलग्न हैं; एक-दूसरे की गर्दन काट रहे हैं। यही इनका धंधा रहा। इसी धंधे पर पंडित और पुरोहित और पोप पलते हैं।
कुछ तमद्दुन के खलफ कुछ दीन के फर्जन्द हैंकुलजमों के रहने वाले बुलबुलों में बंद हैं
और जो सागरों में जी सकते थे, जो सागर हो सकते थे, वे बुलबुलों में बंद हैं। और तुम मुझसे पूछते हो मैं धर्मों के खिलाफ क्यों बोलता हूं! मैं बुलबुले फोड़ना चाहता हूं, ताकि तुम सागर हो जाओ। तुम्हें बुलबुलों में बंद होने की कोई जरूरत नहीं है।
कुछ तमद्दुन के खलफ कुछ दीन के फर्जन्द हैंकुलजमों के रहने वाले बुलबुलों में बंद हैंकाबिले-इबरत है ये महदूदियत इंसान कीचिट्ठियां चिपकी हुई हैं मुख्तलिफ अद्यान की
हर आदमी की छाती पर चिट्ठी चिपकी हुई है--हिंदू, मुसलमान... । आदमी हो
कि बाजार में बिकने वाले जूतों के डब्बे हो--फ्लेक्स के जूते, कि बाटा के जूते, कि बंदर छाप काला दंतमंजन! क्या हो तुम? आदमी हो या सामान हो? हर आदमी के ऊपर लेबिल लगा हुआ है।
फिर रहा है आदमी भूला हुआ भटका हुआइक न इक लेबिल हर एक माथे पे है लटका हुआआखिर इन्सां तंग सांचों में ढल जाता है क्योंआदमी कहते हुए अपने कोशर्माता है क्यों
क्यों कहते हो हिंदू अपने को? क्यों कहते मुसलमान? क्यों जैन, क्यों ईसाई, क्यों सिंधी, क्यों पंजाबी, क्यों गुजराती, क्यों मराठी? कितने पागलपन हैं तुम्हारे! पागलपनों के भीतर और पागलपन, उनके भीतर और पागलपन। कोई अंत नहीं। डब्बों के भीतर डब्बे, डब्बों के भीतर डब्बे। एक डब्बा खोलो तो दूसरा डब्बा निकल आता है। उसे खोलो तो तीसरा डब्बा निकल आता है। कोई अंत ही नहीं मालूम होता डब्बों का। आदमी हो कि डब्बे हो?
आखिर इन्सां तंग सांचों में ढल जाता है क्योंआदमी कहते हुए अपने कोशर्माता है क्योंक्या करे हिंदोस्तां अल्लाह की ये भी है देनचाय हिंदू, दूध मुस्लिम, नारियल सिक्ख, बेर जैनअपने हमजिन्सों के कीने से भला क्या फायदाटुकड़े-टुकड़े हो के जीने से भला क्या फायदा
अपने ही जैसे संगी-साथी मनुष्यों से द्वेष करने से क्या मिलेगा?
धर्म प्रेम है। और जैसे ही धर्मों में उलझे कि प्रेम समाप्त, द्वेष शुरू। धर्म दोस्ती है। और धर्मों में सिवाय दुश्मनी के और कुछ भी नहीं। अपने हमजिन्सों के कीने से भला क्या फायदाटुकड़े-टुकड़े हो के जीने से भला क्या फायदा
मैं धर्मों के खिलाफ इसलिए बोलता हूं कि आदमी को टुकड़े-टुकड़े नहीं देखना चाहता हूं। और आदमी जब तक टुकड़े-टुकड़े है, तब तक आदमी के जीवन में सूरज नहीं उग सकता।
अब तुम यहां आ ही गए प्रोफेसर काली प्रसाद श्रीवास्तव उर्फ लल्लू के पट्ठे! कुछ काम की बात पूछो। ये पजामे जो तुम पहने हो, छोटे पड़ गए हैं। यह कमीज बड़ी छोटी पड़ गई है। इसमें बंधे रहने से क्या फायदा? इन जंजीरों से मुक्त होओ। और जब यहां आ गए, जब इतनी दूर चल कर आ गए, तो कुछ यहां का रस पीकर जाओ।
वाइजे मोहतरम इस तरह आपकावादाखाने में आना बुरी बात है। आ गए हैं तो फिर थोड़ी पी लीजिएबिन पीए लौट जाना बुरी बात है। तेरा कहना सर-आंखों पे ऐ नासेहाउनका पीना-पिलाना बुरी बात है, पर करे रिंद क्या छाई हो जब घटाफिर न बोतल उठाना बुरी बात है। आएगा हस्र जब देखा जाएगा तबक्यूं अभी से डरें

शेखजी बेसबब, हैं बड़े कीमती उम्र के चार दिनइनको यूं ही गंवाना बुरी बात है। घूंट दो घूंट पीकर मचल जाए जोबादानोशी की हद से निकल जाए तोऐसे कमजर्फ मैकश को ऐ मैकशोसाथ अपने बिठाना बुरी बात है। वाइजे मोहतरम इस तरह आपकावादाखाने में आना बुरी बात है। आ गए हैं तो फिर थोड़ी पी लीजिएबिन पीए लौट जाना बुरी बात है।
यहां आ ही गए... यह तो मधुशाला है। यहां तो रसो वै सः की धूम मची है। यहां तो परमात्मा को पीना है। यहां सड़े-गले धर्मों को थोड़े ही ढोना है। जब जीवंत सत्य मिल सकता हो, जब स्वच्छ जल की धार बह रही हो, तब क्यों डबरों की बात उठाना? क्यों सड़े-गले कीचड़ की बात उठाना? मगर हमारे दिमाग वहीं उलझे हैं। तो आ भी जाते हैं बहुत लोग और वंचित चले जाते हैं। उसमें मेरा कोई कसूर नहीं।
यह बात कुछ ऐसी है कि पीओगे तो ही जानोगे। यह बात कुछ ऐसी है कि जीओगे
तो ही जानोगे। यह बात कुछ कहने की, समझाने की नहीं। यह बात कुछ बतलाने की नहीं। यह बात तो रिंदों की है, पियक्कड़ों की है, मयकशों की है। यह तोशराब है परमात्मा की; जिसने पी ली, फिर सब शराबें झूठी पड़ जाती हैं। जिसने पी ली, फिर सब शास्त्रझूठे पड़ जाते हैं। जिसने एक बूंद भी चख ली, उसने सागर का राज पा लिया।
मैं धर्म का पक्षपाती हूं, इसलिए धर्मों के विरोध में हूं। क्योंकि मेरे लिए धर्म एकवचन है और उसका बहुवचन होना असंभव है।
आज इतना ही।

बहुतेरे हैं घाट
चौथा प्रवचन

अंतिम स्वर्ण सोपान: परम मौन

पहला प्रश्नः
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः
वृद्धाः न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
नासो धर्मो यत्र न सत्यमस्ति
न तत्सत्यं यच्छलेलानुविद्धम्।।
"जिसमें वृद्ध नहीं हैं वह सभा नहीं है; जो धर्म को नहीं बतलाते वे वृद्ध नहीं हैं।
जिसमें सत्य नहीं है वह धर्म नहीं है; जिसमें छल मिला हुआ है वह सत्य नहीं है।"
महाभारत के इस सुभाषित पर कुछ कहने की कृपा करें।

सहजानंद, वृद्ध होना तो बहुत आसान है। कुछ न करो तो भी वृद्ध हो ही जाओगे। अधार्मिक भी वृद्ध हो जाता है, धार्मिक भी वृद्ध हो जाता है; पापी भी, पुण्यात्मा भी; साधु भी, असाधु भी। वृद्ध होना कोई कला नहीं है। पशु- पक्षी भी वृद्ध होते हैं, वृक्ष भी वृद्ध होते हैं, पहाड़-पर्वत भी वृद्ध होते हैं। जैसे विंध्याचल पर्वत पृथ्वी का सबसे ब.ूढा पर्वत है--इतना कि उसकी कमर झुक गई है। उसकी झुकी कमर के कारण ही यह कहानी बनी कि अगस्त्य ऋषि दक्षिण गए, तब विंध्याचल ने झुक कर उनको नमस्कार किया। और वे कह गए कि जब तक मैं लौट न आऊं, तब तक तू झुका रहना। फिर वे लौटे नहीं, वे समाप्त ही हो गए। तब से बेचारा विंध्याचल झुका ही है। असलियत यह है कि विंध्याचल पृथ्वी पर सबसे बूढ़ा पर्वत है और हिमालय सबसे युवा।
पर्वत भी बूढ़े होते हैं, वृक्ष भी बूढ़े होते हैं, पशु-पक्षी भी बूढ़े होते हैं, आदमी भी बूढ़ा होता है। बूढ़ा होना कोई अपने में गुण नहीं है। इसकी कोई महत्ता नहीं है।
इसलिए यह सूत्र कहता हैः "जिसमें वृद्ध नहीं हैं वह सभा नहीं है।" इसका अगर मोटा-मोटा अर्थ लो, तब तो यह सूत्र बिल्कुल गलत है। लेकिन इसका गहरा अर्थ भी लिया जा सकता है। मैं आश्वासन नहीं दे सकता कि वही गहरा अर्थ महाभारत का भी रहा होगा, क्योंकि सूत्र का बाकी हिस्सा भी बहुत उथली बातों से भरा है। लेकिन इन उथली बातों का संकेत इस भांति उपयोग किया जा सकता है कि तुम्हारे लिए मार्गदर्शक हो सके।
इसलिए मुझे चिंता नहीं है कि महाभारत का क्या अर्थ है। मुझे इसकी चिंता है कौन सा अर्थ तुम्हारे लिए सार्थक होगा। मुझे तुम्हारी फिकर है, महाभारत से मुझे क्या लेना-देना?
इसलिए वृद्ध का मैं अर्थ करता हूं परिपक्व, बूढ़ा नहीं। जीवन के अनुभव
ने जिसे प्रौढ़ता दी है, उम्र उसकी कुछ भी क्यों न हो। शंकराचार्य तैंतीस वर्ष की उम्र में मरे, वृद्ध तो नहीं थे; लेकिन फिर भी एक प्रौढ़ता है जो बूढ़ों में भी नहीं होगी। जीसस की मृत्यु भी तैंतीस वर्ष में हुई, मारे गए, तब तक बूढ़े तो न थे। इस अर्थ में तो जीसस, शंकराचार्य जैसे लोग सभा में बैठने योग्य भी नहीं थे। "सभा" शब्द से ही "सभ्य" बना है। सभ्य का अर्थ है, जो सभा में बैठने योग्य हो; जिसे सलीका आता हो; जिसे इतना अदब आता हो कि बैठ सके, सुन सके, समझ सके। और इसी सभा शब्द से सभ्यता शब्द बना है। जो सभा में बैठने योग्य है वह सभ्य। और सभ्य लोगों का जो समूह है, उसके जीवन की जो शैली, जो व्यवस्था, जो आचरण, जो अनुशासन है--वह सभ्यता।
निश्चित ही इसका संबंध उम्र से नहीं हो सकता, क्योंकि बूढ़े से बूढ़े शैतान पाए जाते हैं और कभी-कभी युवा से युवा संत भी। सच तो यह है जो युवा होते हुए संत न हो सका, क्या खाक बूढ़ा होकर संत हो सकेगा! जब ऊर्जा थी, जब जीवन को समझने की, जीवन की चुनौती को अंगीकार करने की सामर्थ्य थी, जब अज्ञात की यात्रा पर निकलने की क्षमता थी, छाती थी, तब जो न गया उस अभियान पर, तब जिसने जीवन के शिखर छूने के लिए अपने पंख न फैलाए, जब उड़ सकता था, जब

प्राणों में सितारों को छूने के सपने थे, तब जो दुबका बैठा रहा अपने घोंसले में, वह तुम सोचते हो बूढ़ा होकर, जीर्ण-जर्जर होकर, खंडहर होकर, सब तरह टूट कर, फूट कर, अब अनंत की यात्रा पर निकलेगा? जीवन भर जिस घोंसले को पकड़ कर बैठा है, अब इस अंतिम क्षण में तुम सोचते हो, अपनी व्यवस्था, अपनी सुरक्षा, अपना सब कुछ छोड़ कर, त्याग कर, उस दूर के किनारे का जिसका कोई भरोसा नहीं, हो या न भी हो, उस दूर के किनारे की खोज उसकी अभीप्सा बनेगी? यह असंभव है।
इसलिए मेरा अर्थ समझने की कोशिश करो। वृद्ध से मेरा अर्थ उम्र से नहीं। वृद्ध से मेरा अर्थ हैः जीवन की अग्नि में जो तपा है, निखरा है, उम्र कोई भी हो। कभी-कभी छोटे-छोटे बच्चों ने भी सत्य को पा लिया है, आसानी से पा लिया है, क्योंकि उनके चित्त का कागज कोरा था, उनके चित्त के दर्पण पर अभी धूल न जमी थी।
इसलिए जीसस ने बार-बार कहा हैः धन्यभागी हैं वे जो छोटे बच्चों की भांति हैं, क्योंकि वे ही मेरे परमात्मा के राज्य में प्रवेश कर सकेंगे। अगर महाभारत और जीसस के वचन में मुझे चुनना हो तो मैं जीसस का वचन चुनना पसंद करूंगा। इसमें ज्यादा सचाई है, ज्यादा प्रखर अग्नि है, अंगार है। लेकिन अगर हम "वृद्ध" शब्द को नयी परिभाषा दें, नया अर्थ दें, जो हमेशा देना चाहिए... । हीरों पर नये पहलू दिए जा सकते हैं तो क्यों न शब्दों के साथ भी हम वही करें? हीरों को निखारा जा सकता है, पुराने से पुराने हीरों को नयी रौनक, नयी ताजगी, नयी चमक दी जा सकती है। जहां तक मुझसे बन पड़ता है वहां तक मैं हर पुराने सत्य को नयी भाव-भंगिमा देता हूं। जहां यह असंभव ही होता है वहीं इनकार करता हूं। इनकार करने में मुझे कोई रस नहीं है, मजबूरी है।
"वृद्ध" का अर्थ उम्र से तो मैं नहीं ले सकूंगा। जहां तक महाभारत का संबंध है, "वृद्ध" से अर्थ उम्र का ही रहा होगा। क्योंकि भारत की यह पुरानी धारणा रही है कि पच्चीस वर्ष तो विद्या-अध्ययन, बचपन; फिर पच्चीस वर्ष गृहस्थ आश्रम, वह दूसरी सीढ़ी, अनुभव; फिर पच्चीस वर्ष वानप्रस्थ आश्रम, जंगल जाने की तैयारी; और फिर चौथा चरण पचहत्तर वर्ष के बाद--संन्यास। वृद्ध को ही संन्यास लेने का अधिकार था, क्योंकि वृद्ध से ही आशा थी कि वह परंपरा को बचाएगा।
बूढ़े की हिम्मत ही नहीं होती क्रांति की, बगावत की। उसके भीतर की आग कभी की बुझ चुकी है। उसके भीतर अब खोजने से चिनगारी भी न मिलेगी, राख ही राख का ढेर है अब। इस बूढ़े पर भरोसा किया जा सकता है। न्यस्त स्वार्थ इस पर भरोसा कर सकते हैं। यह अब वही दोहराएगा जो परंपरा कहती है, जो शास्त्र कहते हैं। यह इंच भर यहां-वहां नहीं हटेगा; यह लकीर का फकीर होगा। अब इस बुढ़ापे में यह इतनी हिम्मत नहीं करेगा कि झंझट मोल ले, बंधे हुए स्थापित मूल्यों से टक्कर ले। अब इस आखिरी उम्र में, जब कि पत्ता पीला पड़ गया है, तूफानों से उलझने की हिम्मत पत्ते की नहीं हो सकती। तूफान तो दूर, हवा का छोटा सा झोंका भी इस पत्ते को ले गिरेगा। अब तो यह पत्ता जोर से पकड़ेगा उस वृक्ष को, जितनी देर पकड़े रह सके। अब तो इसकी पकड़ बहुत मजबूत हो जाएगी। अब तो मरने का डर ही पर्याप्त होगा इसे। नर्क-स्वर्ग, सारी धारणाओं को यह स्वीकार कर लेगा। ईश्वर पर अब संदेह न कर सकेगा। संदेह करने के लिए थोड़ा युवापन चाहिए। स्वर्ग और नर्क पर प्रश्न-चिह्न लगाने के लिए मौत से जरा फासला चाहिए। पीला पत्ता यूं कंप रहा है, अभी गिरा, अभी गिरा। यह क्या इनकार कर सकेगा? यह क्या संघर्ष ले सकेगा? संघर्ष का बल कहां से जुटाएगा? थोड़ा-मोड़ा जो भी इसके पास बल बचा है, वह एक ही काम में लगाएगा कि वृक्ष को जितनी देर पकड़ सके।
इसलिए सारे समाजों ने--और यह समाज पुराना समाज है, पुराने से पुराना--
इस बात की कोशिश की है कि वृद्ध को ही शिक्षा देने का अधिकार हो, क्योंकि वृद्ध वही कहेगा जो सदियों ने कहा है। वह कभी परंपरा के विपरीत न जाएगा। उस पर आश्वासन रखा जा सकता है। वह दकियानूस होगा। वह मर ही चुका है। वह मरा-मरा है। वह सिर्फ वही दोहराएगा तोते ही तरह, जो उसने सुन रखा है।

न्यस्त स्वार्थ वृद्धों का सहारा लेते हैं। इसलिए सभी न्यस्त स्वार्थ "बूढ़े को समादर दो" इसका आग्रह करते हैं। बच्चे का अपमान है, जवान की निंदा है, बूढ़े का समादर है। यूं अगर गौर से देखो तो तुमने जीवन का इनकार कर दिया और मृत्यु का समादर किया। बूढ़ा मृत्यु के करीब है, जीवन से रोज दूर हटता गया है। जीवन तो पीछे छूट गया, रास्ते की उड़ती हुई धूल है। आगे तो मौत का अंधेरा है।
वृद्ध को सम्मान देने वाले समाज मौत को सम्मान दे रहे हैं। सम्मान तो मिलना चाहिए बच्चे को। सम्मान उससे भी ज्यादा मिलना चाहिए जवान को, उससे भी ज्यादा सम्मान मिलना चाहिए प्रौढ़ को। और जो इस तरह जीवन को क्रांतिमय ढंग से जीए, तब अगर वृद्ध हो तो उसकी वृद्धता प्रौढ़ता होगी, परिपक्वता होगी।
बुद्ध भी वृद्ध हुए, बयासी वर्ष के हुए। लेकिन बयासी वर्ष की उम्र में
भी वही आग है, वही प्रज्वलित अग्नि! मरते क्षण आखिरी संदेश भी यही हैः "अपने दीये स्वयं बनो।" परंपरा का आग्रह नहीं, शास्त्र का आग्रह नहीं, सुनी-सुनाई बकवास का आग्रह नहीं।
सुकरात अस्सी साल की उम्र में जहर देकर मारा गया। लेकिन मरते समय भी चित्त उसका युवा है। बाहर जहर तैयार किया जा रहा है, उसके शिष्य रो रहे हैं और वह उनसे कह रहा हैः "रो लेना बाद में। इतनी क्या जल्दी है? छह बजने के करीब हैं, छह बजे जहर दे दिया जाएगा। रोने के लिए तुम्हें जिंदगी पड़ी है। थोड़ी देर मेरे साथ और हो लो, थोड़ी देर और मेरे साथ जी लो। फिर मैं यहां नहीं रहूंगा। रोना पीछे कर लेना, रोना-धोना कभी भी कर लेना, जब सुविधा हो तब कर लेना। अभी तो हंस लो, अभी तो बोल लो। अभी तो समारोह। अभी तो मैं जिंदा हूं! अभी तो मैं जवान हूं! अभी तो मरा नहीं! और अगले क्षण क्या होगा, इतनी जल्दी क्या है? फिर इतनी चिंता क्या है? मरने में दो ही संभावनाएं हैं... ।"
यह देखते हो मरते हुए आदमी की... बाहर सिल पर जहर घोंटा जा रहा है, उसकी आवाज आ रही है--घर्र-घर्र। जहर तैयार होता जा रहा है, घड़ी का कांटा करीब पहुंच रहा है, इधर सूरज ढला कि इधर जहर का प्याला तैयार हो जाएगा। और सूरज ढलने के करीब है, लेकिन जरा भी मोह नहीं जीवन का, जरा भी पकड़ रखने की आसक्ति नहीं। और जो सुकरात ने कहा वह बड़ा विचारणीय है। मरते हुए आदमी का वक्तव्य है।
सुकरात ने कहा कि दो ही संभावनाएं हैं--इसमें रोने की बात क्या? या तो नास्तिक सही है कि तुम मरे कि सब मरा, फिर कुछ बचता नहीं। जब बचता ही नहीं तो डर क्या है? डर किसको है? जब मैं बचूंगा ही नहीं तो चिंता क्या है? पानी का बबूला था, फूट गया, फूट गया। एक कहानी थी, टूट गई, टूट गई। एक सपना था, बिखर गया, बिखर गया। यूं भी सपने में कुछ न था। यूं भी पानी के बबूले में क्या था?
तो अगर नास्तिक सही कहते हैं--यह सुकरात की चिंतना की प्रक्रिया थी,
यह सुकरात के सोचने का ढंग था, यह उसकी कला थी--अगर नास्तिक सही कहते हैं तो रोना बंद करो। नास्तिक यही कह रहे हैं कि मैं हूं ही नहीं। इसलिए मिट जाऊंगा। जो है ही नहीं वह मिटेगा, मिटना ही चाहिए। और अगर आस्तिक सही कहते हैं कि आत्मा अमर है, देह गिरेगी, मगर आत्मा बचेगी, फिर तो रोने को कुछ भी नहीं। देह तो मैं नहीं हूं। अगर आस्तिक सही हैं तो मैं आत्मा हूं। आत्मा अमर है। तो भी रोने को कुछ नहीं। और ये दो ही विकल्प हैं, तीसरा कोई विकल्प नहीं। दोनों हालत में आनंद से विदा दो।
यह युवा चित्त, मगर प्रौढ़, चित्त दोनों है इस सुकरात का। अभी यूं जवान, जैसे ताजा-ताजा फूल। अभी यूं जवान, जैसे धुला-नहाया दर्पण। सद्यःस्नात! और यूं प्रौढ़ कि मौत भी द्वार पर दस्तक दे रही है और इसके भीतर कोई हलन-चलन नहीं, कोई कंपन नहीं।
अगर कोई आदमी इस भरोसे में निश्चिंत मर जाता है कि आत्मा अमर है, तो हो
भी सकता है यह केवल भरोसा रहा हो, ज्ञान न रहा हो; यह बोध न रहा हो, यह केवल मान्यता रही हो। और मान्यता एक तरह का सम्मोहन पैदा कर देती है। और यह भी हो सकता है कि कोई नास्तिक इस भरोसे में मर जाता हो कि सब समाप्त ही हो रहा है, इसलिए चिंता क्या! मगर वह मान्यता भी मान्यता है।

सुकरात की प्रौढ़ता बहुत अदभुत हैः कोई मान्यता नहीं है। मान्यता होती
ही बुद्धुओं की है। बुद्धिमान की कोई मान्यता नहीं होती। बुद्धिमान तो प्रतिक्षण जीवन को उसकी चुनौती के साथ स्वीकार करता है। यह चुनौती सामने खड़ी है, दो विकल्प हैं। मौत अभी जानी नहीं। इसलिए सुकरात कहता हैः "जिसको मैंने जाना नहीं, उसके संबंध में तुमसे क्या कहूं? बचूंगा या नहीं बचूंगा, यह तो मर कर ही जानूंगा, उसके पहले नहीं कह सकता हूं। हां, मरते-मरते जो भी बन सकेगा, कह जाऊंगा।"
और मरते-मरते भी सुकरात कहता गया। जहर घोंटने वाला देर कर रहा है; वह
भी सुकरात का प्रेमी है। मजबूरी है। उसका काम है जहर घोंट कर पिलाना, जिनको सजा मिली हो मृत्यु की। यह एथेंस में जहर पिला कर ही मारने की व्यवस्था थी। मगर वह देर कर रहा है जहर को घोंटने में। सुकरात ने कहा कि देर हुई जाती है। सुकरात उठ कर बैठा, द्वार पर आया और उसने कहाः "बड़ी देर कर रहे हो! हमेशा काम में कुशल होना चाहिए। और जो भी काम करो, उसमें एक व्यवस्था, एक सलीका होना चाहिए।"
खुद के लिए जहर घोंटा जा रहा है। यह बूढ़ा आदमी इस तरह की बात नहीं कह सकता था। यह तो कहता--"और थोड़ी देर करो, ऐसी भी जल्दी क्या है? जितनी देर रह जाऊं अटका इस वृक्ष से। पीला पत्ता हूं, कब गिरा क्या भरोसा। जितनी देर अटका रह जाऊं। जितनी देर और जी लूं, दो सांस और ले लूं! एक बार और भर नजर देख लूं इस सुंदर लोक को! धन्यवाद तुम्हारा!"
नहीं, लेकिन यह नाराज होता है। यह कहता है, "छह बज गए, सूरज ढल गया और तेरे काम में इतनी देर हो रही है; यह उचित नहीं, यह तर्कसंगत नहीं।"
उस आदमी की आंखों में आंसू हैं। वह बोला, "आप भी पागल हो। मैं इसलिए देर कर रहा हूं कि जितनी देर हो सके, सुकरात जैसा आदमी और जी ले।"
सुकरात ने कहा, "जीना तो देख चुका, अब मौत को देखना है। जीना तो खूब देख लिया। जीना तो भरपूर देख लिया। जीवन तो जी लिया, पी लिया, समझ लिया। जीवन जो दे सकता था, ले लिया। अब तू अटका मत। अब यह मौत का निमंत्रण द्वार पर खड़ा है। अब यह मौत की नाव आ लगी किनारे पर। अब मुझे सवार होने दे और जाने दे। अब मुझे देखने दे कि मौत क्या है।"
जहर पीया, सुकरात लेट गया। उसके शिष्य उसके डर के कारण रो भी नहीं सकते, शोरगुल भी नहीं मचा सकते। उनकी छाती फटी जा रही है। स्वभावतः, उनकी आंखें गीली हैं। और जैसे रात का अंधेरा उतरने लगा, उनके आंसू भी ढलने लगे, क्योंकि अब सुकरात देख न सकेगा। और सुकरात क्या कह रहा है?
सुकरात कह रहा हैः "सुनो, गौर से सुनो! मेरे पैर शून्य हुए जा रहे हैं, लेकिन मैं अपने भीतर स्वयं को उतना का उतना पाता हूं, जरा भी अंतर नहीं। यूं मेरे घुटने तक सन्नाटा आ गया है। अब मैं अपने घुटने को छूता हूं तो मुझे कोई स्पर्श का बोध नहीं होता, अर्थात घुटने तक सुकरात मर चुका है। लेकिन मेरे भीतर अभी मैं अखंड हूं, मेरी चेतना में कुछ भी नहीं मरा।"
और तब जंघाओं तक सुकरात खबर देता हैः "मैं मर चुका।"
और तब कहता हैः "मेरे हाथ भी ठंडे पड़े जा रहे हैं। अब मैं अपने हाथों
को भी अनुभव नहीं कर रहा हूं। मगर याद रखना, मेरी चेतना अभी वैसी की वैसी अखंड है, अछूती है। वहां कुछ भी परिणाम नहीं हुआ। जहर वहां नहीं पहुंचा है। शायद जहर वहां नहीं पहुंचेगा।"
और तब वह कहता हैः "मेरे हृदय की धड़कनें भी अब ठंडी पड़ने लगीं। आहिस्ता-आहिस्ता मेरा हृदय डूबा जा रहा है। मगर मैं तुमसे कहता हूं कि मैं नहीं डूबा हूं, मैं वैसा ही सतेज हूं। सच पूछो तो मेरा तेज और प्रखर है। मैं मर नहीं रहा हूं; जैसे एक नया जीवन! जैसे सांप केंचुली बदल रहा है। एक कारागृह से मुक्त हो रहा हूं।"
और तब वह कहता हैः "अब मेरा मस्तिष्क भी शून्य होने लगा। शायद यह मेरा आखिरी वक्तव्य होगा, क्योंकि मेरी जीभ पर भी असर आ रहा है और जीभ लड़खड़ाने लगी है। अंतिम बात तुमसे कह जाऊं कि मस्तिष्क शून्य हुआ जा रहा है, जीभ लड़खड़ा रही है, लेकिन मैं थिर हूं। भीतर कुछ भी नहीं लड़खड़ाया है। भीतर सब मौन है, सब सन्नाटा है। ऐसा, जैसा कभी न था। मैं आनंदित हूं। मैं मर नहीं रहा हूं। मैं मर नहीं सकता हूं। सब मर गया है और इसलिए इस मरी हुई देह के

बीच में मैं पहली बार इस पृष्ठभूमि में अपनी अमरता का अनुभव कर रहा हूं। मैं अमृत हूं।"
यह प्रौढ़ता। उम्र का कोई सवाल नहीं। जीसस तैंतीस साल की उम्र में वृद्ध हैं, प्रौढ़ हैं। सुकरात बयासी साल की उम्र में वृद्ध है; महावीर इसी उम्र में, बयासी के करीब; बुद्ध बयासी के करीब। उम्र से कुछ लेना-देना नहीं है। तब यह बात सही हो सकती है--
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धाः।
जिसमें वृद्ध नहीं, वह सभा नहीं। जहां प्रौढ़ लोग नहीं हैं; जहां परिपक्व लोग नहीं हैं; जिन्होंने जीवन की अग्नि में अपने को तपाया और निखारा नहीं है, जो भगोड़े हैं, पलायनवादी हैं; जो जीए नहीं हैं; जो जीवन की तरफ पीठ करके भाग गए हैं; जो रणछोड़दास जी हैं--इनसे सभा नहीं बनती, इनसे सत्संग निर्मित नहीं होता
मरने की दुआएं क्यों मांगूं?
जीने की तमन्ना कौन करे?
ये दुनिया हो या वो दुनियाअब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे?
मरने की दुआएं क्यों मांगूं?
जो आग लगाई थी तुमने उसको तो बुझाया अश्कों ने
जो अश्कों ने भड़काई है उस आग को ठंडा कौन करे?
मरने की दुआएं क्यों मांगूं?
जब कश्ती साबितो-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी? अब ऐसी शिकस्ता कश्ती परसाहिल की तमन्ना कौन करे?
मरने की दुआएं क्यों मांगूं?
दुनिया ने हमें छोड़ा ऐ दिल हम छोड़ न दें क्यों दुनिया को?
दुनिया को समझ कर बैठे हैंअब दुनिया-दुनिया कौन करे?
मरने की दुआएं क्यों मांगूं? जीने की तमन्ना कौन करे?
ये दुनिया हो या वो दुनिया अब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे?
मरने की दुआएं क्यों मांगूं?
मरने की दुआएं क्यों मांगूं? जीने की तमन्ना कौन करे? ये दुनिया हो या
वो दुनियाअब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे? मरने की दुआएं क्यों मांगूं? जो आग लगाई थी तुमने उसको तो बुझाया अश्कों ने जो अश्कों ने भड़काई है उस आग को ठंडा कौन करे? मरने की दुआएं क्यों मांगूं? जब कश्ती साबितो-सालिम थी साहिल की तमन्ना किसको थी? अब ऐसी शिकस्ता कश्ती परसाहिल की तमन्ना कौन करे? मरने की दुआएं क्यों मांगूं? दुनिया ने हमें छोड़ा ऐ दिल हम छोड़ न दें क्यों दुनिया को? दुनिया को समझ कर बैठे हैंअब दुनिया-दुनिया कौन करे? मरने की दुआएं क्यों मांगूं? जीने की तमन्ना कौन करे? ये दुनिया हो या वो दुनिया अब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे? मरने की दुआएं क्यों मांगूं? वस्तुतः जो प्रौढ़ है, न तो उसके भीतर जीने की अभीप्सा रह जाती है और न मरने की आकांक्षा। यह कसौटी है।
एक ही धर्म है दुनिया में--जैन धर्म--जो अपने मुनियों को मरने की सुविधा देता है; जो इस बात की आज्ञा देता है कि जब मुनि ऐसा अनुभव करे कि अब जीने में कोई सार नहीं, वह अन्न-जल त्याग दे, आमरण अनशन पर बैठ जाए और यूं रोज अपने को गलाता-गलाता मर जाए।
यह आत्महत्या है और विचारणीय है। यह जैन धर्म की पूरी जीवन-दृष्टि की पराकाष्ठा है। जैन धर्म संभवतः सबसे ज्यादा जीवन-विरोधी धर्म है। तभी तो उसकी यह अंतिम निष्पत्ति है कि वह आत्महत्या को भी अंगीकार करता है। न केवल अंगीकार करता है, बल्कि उसको महान सम्मान देता है।
अभी-अभी कर्नाटक में बाहुबली की विशाल प्रतिमा पर लाखों रुपये खर्च करके दूध से प्रतिमा को स्नान कराया गया। संभवतः पृथ्वी पर सबसे बड़ी प्रतिमा है बाहुबली की। अपूर्व है कला की दृष्टि से। मगर यह जान कर तुम चकित होओगे कि यह प्रतिमा बाहुबली की बनी क्यों! यह बनी संलेखना के कारण। "संलेखना" जैनियों का शब्द है आत्महत्या के लिए। बाहुबली ने "संलेखना" करके, आमरण उपवास करके अपना शरीर त्याग कर दिया। इसलिए यह विशाल प्रतिमा खड़ी की गई सम्मान में। यह सम्मान इतना बड़ा दिया गया कि न तो महावीर की ऐसी

कोई प्रतिमा है, न नेमिनाथ की कोई ऐसी प्रतिमा है, न ऋषभदेव की, जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर की कोई ऐसी प्रतिमा है।
और यह भी जान कर तुम हैरान होओगे कि जैन मानते हैं केवल चौबीस तीर्थंकर हुए, इसलिए उन चौबीस को छोड़ कर किसी और को भगवान नहीं कहते हैं। लेकिन वे सभी सहज मरे, संलेखना से नहीं मरे। मौत जब आई तब आई। बाहुबली अपने हाथ से मरे। इसलिए शास्त्रीय नहीं है बाहुबली को भगवान कहना, क्योंकि वे कोई तीर्थंकर नहीं हैं, न ही किसी शास्त्रों में उनके भगवान होने का उल्लेख है। लेकिन शोरगुल मचा कर, दुंदुभी पीट कर उनको भगवान बाहुबली कहना शुरू कर दिया गया। उनको भगवान कहने का कुल कारण इतना था कि उन्होंने अपने हाथ से जीवन का त्याग किया।
लेकिन यह जरा सोचने जैसा है। जो व्यक्ति जीवन से ऊब गया है, वही तो जीवन का त्याग करेगा। और ऊब कोई बड़ी ऊंची अवस्था नहीं। ऊब कोई आनंद नहीं। ऊब कोई जीवन का अनुभव नहीं। ऊब कोई जीवन का सौंदर्य नहीं। ऊब कोई जीवन के सहस्रदल का खिलना नहीं। ऊब तो सिर्फ इतना बताती है कि तुम गलत ढंग से जीए। तुम जीए नहीं, तुम जीवन से अपरिचित रह गए। और तुम इतने ऊब गए हो जीवन से कि अब तुम्हारी आशा मौत पर अटकी है, कि जीवन में तो कुछ नहीं पाया, शायद मौत में कुछ मिल जाए। आशा नहीं मरी, वासना नहीं मरी। चूंकि तुम जीवन ठीक से न जीए, सम्यक रूप से न जीए, इसलिए जीवन खाली का खाली गया, हाथ भरे नहीं जीवन की संपदा से, तो अब आशा कर रहे हो मृत्यु से। वही वासना, जो जीवन में अधूरी रह गई उसे मृत्यु में पूरा करना चाहते हो? जिसे जीवन में पूरा न कर सके उसे मृत्यु में क्या खाक पूरा करोगे! जीवन लंबा है, मृत्यु तो एक क्षण में घट जाएगी। जो इतने लंबे समय में भी न कर सके, वह एक क्षण में कैसे कर पाओगे? मृत्यु तो उसी की सुंदर हो सकती है जिसका जीवन परम सुंदर रहा हो। मृत्यु तो जीवन की पराकाष्ठा है। वह तो अंतिम स्वर है बांसुरी का। लेकिन जिसने जीवन भर बांसुरी को साधा हो, जिसके स्वर सधे हों, बंधे हों सुर-ताल-लय में, जिसका छंद जगा हो, वही मौत को गाते हुए, नृत्य लेते हुए अंगीकार कर सकेगा। उसे मरने के लिए आयोजन करने की जरूरत नहीं। आयोजन तो वासना है। मौत आएगी तो अंगीकार--आनंद से, अहोभाव से, जैसा जीवन अंगीकार। उसके भीतर यह दुविधा नहीं, यह द्वैत नहीं।
इसलिए बाहुबली को दिया गया यह सारा सम्मान मृत्यु को दिया गया सम्मान है। लेकिन मृत्यु को सीधा सामने लाया नहीं जाता, उसे छिपाया जाता है। हम हर तरह से छिपाने की कोशिश करते हैं। जैन मुनि, जो नग्न रहते हैं, वे भी नग्न नहीं कहलाते, "दिगंबर" कहलाते हैं। दिगंबर अर्थात आकाश जिनका वस्त्र है। और कोई नंगा रहे तो नंगा, और ये जो नंगे हैं, ये आकाश का वस्त्र पहने हुए हैं!
हम शब्दों की आड़ में क्या-क्या छिपाते हैं! आत्महत्या की आड़ में हम छिपाते हैं--त्याग, जीवन से मुक्ति।
लेकिन जो जीवन से मुक्त हो गया है, उसकी मृत्यु में भी कोई आकांक्षा न
रह जाएगी। सुकरात कहीं ज्यादा सतेज, ज्यादा प्रखर, ज्यादा बोध से भरा हुआ व्यक्ति है। ये बाहुबली वगैरह, इनकी प्रतिमा कितनी ही बड़ी बनानी हो तो बना लो, मगर ये पत्थर की प्रतिमाएं कुछ और छिपाए बैठी हैं। ये प्रतिमाएं तुम्हारे मृत्यु के समादर को छिपाए बैठी हैं।
और वही समादर छिपा हुआ है इस सूत्र मेंः "जिसमें वृद्ध नहीं वह सभा नहीं।"
तो असली सभा तो वह होगी जहां सब मुर्दे बैठे हों। जहां भूत-प्रेत इकट्ठे हों, उसका तो कहना ही क्या! वह असली सत्संग, महा सत्संग! वह तो मरघट पर ही होगा। जिनकी एक टांग कब्र में चली गई, वे वृद्ध; जिनकी दोनों चली गईं, वे महा वृद्ध। जो कई दिनों से कब्र में हैं उनका तो कहना ही क्या! और उन्हीं की प्रशंसा है।
आगे सूत्र कहता हैः वृद्धाः न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
"और जो धर्म को नहीं समझाते-बतलाते, वे वृद्ध नहीं हैं।"
अब धर्म को न तो समझाया जा सकता है और न बतलाया जा सकता है। जो धर्म को समझाते हैं और बतलाते हैं वे पंडित हैं, वृद्ध नहीं। मेरे अर्थों में

वृद्ध नहीं। मेरे अर्थों में बुद्ध नहीं। मेरे अर्थों में तो बुद्ध ही केवल वृद्ध हैं। लेकिन बुद्ध धर्म को नहीं बतलाते, न समझाते; धर्म को जीते हैं। बुद्ध के पास बैठ कर धर्म संक्रामक होता है। जैसे बीमारी संक्रामक होती है वैसे ही स्वास्थ्य भी संक्रामक होता है। जैसे दुख संक्रामक होता है वैसे ही आनंद भी संक्रामक होता है। बतलाने का कोई सवाल नहीं।
वृद्धाः न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
अगर इसका हम सीधा-सीधा अर्थ करें सहजानंद, जो धर्म को नहीं बतलाते वे वृद्ध नहीं हैं, तब तो फिर लाओत्सु वृद्ध नहीं है, क्योंकि जिंदगी भर उसने इनकार किया कि धर्म के संबंध में जो भी कहा जाएगा वह गलत होगा। इसलिए और सब पूछो, धर्म के संबंध में मत पूछो। धर्म को समझना है तो चखो, पीयो। मेरे पास बैठो, उठो, जीओ। शायद लग जाए हवा।
धर्म तो हवा है, एक लहर है, एक तरंग है! शायद छू ले। शायद हृदय में गुदगुदी उठा जाए। शायद छू जाए। कोई तार हृदय का बज उठे। किसी अनहोने क्षण में, जिसकी कोई भविष्यवाणी नहीं हो सकती, कब घट जाए कोई नहीं कह सकता। क्योंकि कब तालमेल बैठ जाए कोई नहीं कह सकता। किस सुबह! रात ठीक निद्रा आई हो, किस सुबह ताजे उठे होओ! किस सुबह चित्त प्रसन्न हो, मग्न हो, पक्षियों के गीतों से तरंगित हो, फूलों ने आंखों को रंग दिया हो, आकाश की ताजगी भीतर तक प्रवेश कर गई हो, कौन जाने किस दिन ऐसी घड़ी हो, सम्यक घड़ी हो और तालमेल बैठ जाए सत्संग में! क्योंकि ऐसा ही हृदय है उसका, जो बुद्ध है। जिस दिन तुम्हारे भीतर भी ऐसा क्षण भर को हृदय हो जाता है, उसी क्षण तालमेल बैठ जाता है, संगति बैठ जाती है, उसी क्षण बुद्ध की बांसुरी और तुम्हारे तबले में संगत पड़ जाती है। बांसुरी के साथ तबला बजने लगता है। और एक बार यह बज जाए, एक बार यह संगीत तुम्हारे भीतर गूंज जाए, तो फिर इसे भूलने का कोई उपाय नहीं।
मगर कोई नहीं कह सकता, कब यह होगा।
बुद्ध तो हर गांव में प्रवेश के पहले घोषणा करवा देते थे कि ये-ये ग्यारह प्रश्न हैं जो कोई मुझसे न पूछे। तो बुद्ध तो वृद्ध नहीं महाभारत के हिसाब से, क्योंकि उन ग्यारह प्रश्नों में वे सब प्रश्न आ जाते हैं जिनके उत्तर नहीं दिए जा सकते। धर्म भी आ जाता है, सत्य भी आ जाता है, निर्वाण भी आ जाता है। वे सारे महत्वपूर्ण प्रश्न आ जाते हैं जिनको तुम सोचते हो कि कोई उत्तर दे दे। बुद्ध घोषणा करवा देते थे कि ये ग्यारह प्रश्न कोई मुझसे न पूछे; इनको छोड़ कर जो पूछना हो पूछे। ये ग्यारह प्रश्न अव्याख्य हैं। ये तो मौन में ही सुने और गुने जा सकते हैं, इनके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता।
तो मुझे अर्थ बदलना पड़ेगा। मैंने वृद्ध का अर्थ कियाः प्रौढ़। मैंने वृद्ध का अर्थ कियाः बुद्ध। तो फिर मुझे वदन्ति का अर्थ करना होगा--जिनके आस-पास, जिनकी हवा में धर्म है। वही धर्म को बोलने की भाषा है। भाषा नहीं, मौन उसे बोलने की भाषा है।
वृद्धाः न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
जिनकी हवा में धर्म न हो; जिनके उठने-बैठने में धर्म न हो; जिनकी आंखों
की झलक में धर्म न हो; जिनके हाथों के इशारों में धर्म न हो; जिनके पास बैठ कर ही धर्म की मदिरा में तुम डूब न जाओ, मस्ती न छा जाए, पैर न लड़खड़ाने लगें--तो समझना कि धर्म नहीं है।
प्रेम शक्ति ने एक कविता प्रश्न के रूप में भेजी है, वह इस संदर्भ में उपयोगी होगी।
प्रेम शक्ति कहती है--
सबको मालूम है मैं शराबी नहीं
फिर भी कोई पिलाए तो मैं क्या करूं?
सिर्फ एक बार नजरों से नजरें मिलीं
हर कसम टूट जाए तो मैं क्या करूं? मुझको मैकश समझते हैं सब बादाकश क्योंकि उनकी तरह लड़खड़ाती हूं मैं मेरी रग-रग में नशा मुहब्बत का है

जो समझ में न आए तो मैं क्या करूं?
हाल देख कर मेरा सहमे-सहमे हैं वो
कोई आया है जुल्फें बिखेरे हुए
मौत और जिंदगी दोनों हैरान हैं
दम निकलने न पाए तो मैं क्या करूं?
कैसी लत, कैसी चाहत, कहां की खताबेखुदी में है भगवन, खुदी का नशाजिंदगी एक नशे के सिवा कुछ नहीं उनको पीनी न आए तो मैं क्या करूं? सबको मालूम है मैं शराबी नहींफिर भी कोई पिलाए तो मैं क्या करूं? कभी इन मदभरी आंखों से पीया था एक जामआज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहींसिर्फ एक बार नजरों से नजरें मिलींहर कसम टूट जाए तो मैं क्या करूं?
सबको मालूम है मैं शराबी नहींफिर भी कोई पिलाए तो मैं क्या करूं? सिर्फ एक बार नजरों से नजरें मिलींहर कसम टूट जाए तो मैं क्या करूं? मुझको मैकश समझते हैं सब बादाकशक्योंकि उनकी तरह लड़खड़ाती हूं मैंमेरी रग-रग में नशा मुहब्बत का हैजो समझ में न आए तो मैं क्या करूं? हाल देख कर मेरा सहमे- सहमे हैं वोकोई आया है जुल्फें बिखेरे हुएमौत और जिंदगी दोनों हैरान हैंदम निकलने न पाए तो मैं क्या करूं? कैसी लत, कैसी चाहत, कहां की खताबेखुदी में है भगवन, खुदी का नशाजिंदगी एक नशे के सिवा कुछ नहींउनको पीनी न आए तो मैं क्या करूं? सबको मालूम है मैं शराबी नहींफिर भी कोई पिलाए तो मैं क्या करूं? कभी इन मदभरी आंखों से पीया था एक जामआज तक होश नहीं, होश नहीं, होश नहींसिर्फ एक बार नजरों से नजरें मिलींहर कसम टूट जाए तो मैं क्या करूं?
बुद्ध के पास, प्रबुद्ध चैतन्य के पास सब कसमें टूट ही जाने वाली हैं। क्योंकि कसमें दिलाई थीं अंधों ने, अंधेरे में जी रहे लोगों ने। और बुद्धों के पास आकर वे सारी कसमें टूट ही जाएंगी, टूट ही जाने वाली हैं। एक बार किसी बुद्ध से नजर से नजर मिली कि तुम्हारी पूरी जिंदगी बदली। फिर कुछ करना भी चाहो तो करने का कोई उपाय नहीं।
वही प्रेम शक्ति पूछ रही है। वह कहती हैः "हर पल मुझे लगता है आप मेरे करीब हैं। लगता है पागल हूं ही। ऐसी मस्ती छाई रहती है"--पूछ रही है--"कि जीने का ढंग ही बदल गया है।"
एक है गैर-मस्त आदमी का जीवन--उदास, थका-मांदा, ऊबा हुआ, अपनी लाश को अपने ही कंधों पर ढोता हुआ, घिसट रहा है, भीड़ के धक्कम-धक्के में चला जा रहा है। सब चल रहे हैं, इसलिए चल रहा है। सब जिस तरफ चल रहे हैं, उसी तरफ चल रहा है। अपनी कोई सूझ नहीं, अपनी कोई बूझ नहीं। अपनी कोई दिशा नहीं, अपनी कोई राह नहीं। भीड़ के धक्के हैं। रुकना भी आसान नहीं। रुकने में कुचल जाने का डर है। राह बदलनी मुश्किल, क्योंकि भीड़ दुश्मन है। भीड़ कहती हैः साथ रहो। इंच भर यहां-वहां हटना मत।
भीड़ उसे सम्मान देती है जो भेड़ की तरह व्यवहार करता है, आदमी की तरह नहीं। भीड़ यानी भेड़ों की ही होती है। भीड़ में जो हैं वे भेड़ें हैं। और सभी के लिए सुविधापूर्ण यही है कि लोग भेड़ें रहें। तो राजनेता जहां धकेलना चाहें, हकेलना चाहें, वहां हकेलें-धकेलें। धर्मगुरु जो करना चाहें करें। डिब्बा था रेल का
तूफान मेल का
डिब्बे में डाकू थे
डाकुओं के हाथों में बंदूकें, चाकू थे।
पचहत्तर यात्री थे
यात्रियों में एक थे खद्दर के कपड़ों में, दिखते थे नालायक लेकिन विधायक थे
जब से चढ़े थे बोले ही जाते थे
वर्तमान सरकार को सर्वोत्तम बताते थे डाकुओं को देख कर यात्री सब डर गए विधायक नहीं डरे
सीट पर खड़े हुए
भयभीत यात्रियों को करके संबोधित

सांसें तक लेने में बेचारे डरते थे सहसा विधायक चुप्पी को तोड़ कर
मुस्का कर कह उठा--
"जंगल में रेल थी तथा जंगल में मंगल था डाकू घुसे रेल में, अब मंगल में जंगल है कैसा सन्नाटा है, कैसा शुभ लग्न है अदभुत एकांत है
वातावरण शांत है
न कोई पुकार है, न कोई आवाज है
यही रामराज है।"
लूट-धन बटोर कर डाकू उतर पड़े
विधायक भी डाकुओं के साथ उतरने लगा यात्रियों ने क्रोधित हो उसको पकड़ लिया खद्दर के कपड़ों को कर दिया तार-तार
कुरते को खींचा तो
कुरते की जेब में छिपा था रिवाल्वर
कुरते के नीचे छिपा हुआ चाकू था
चीख पड़े यात्री सब
विधायक के वेश में वह भी एक डाकू था।
नेता यही चाहते हैं कि लोग भेड़ें रहें, तो ही उनको काटा जा सकता है। पंडित भी यही चाहते हैं कि लोग भेड़ें रहें, तो ही उनकी बलि चढ़ाई जा सकती है।
प्रेम शक्ति, तू पूछती हैः कि ऐसी मस्ती छाई रहती है कि जीने का ढंग ही बदल गया। घरवाले, सगे-संबंधी कहते हैं--यह संन्यास नहीं, ढोंग है और अजीब पागलपन है। उनका कहना है कि उनकी आशाएं, उनकी परंपराएं, इज्जत-शोहरत, सब मैंने चकनाचूर कर दी है। उनसे मेरी भाषा का तालमेल ही नहीं बैठता। रह-रह कर अंदर न जाने कहां से अनजाने आवाज उठती है--
सबको मालूम है मैं शराबी नहीं
फिर भी कोई पिलाए तो मैं क्या करूं?
सिर्फ एक बार नजरों से नजरें मिलीं
हर कसम टूट जाए तो मैं क्या करूं?
सबको मालूम है मैं शराबी नहींफिर भी कोई पिलाए तो मैं क्या करूं? सिर्फ एक बार नजरों से नजरें मिलींहर कसम टूट जाए तो मैं क्या करूं? घरवालों को तो अड़चन होगी। उनकी आशाएं टूटीं। उनकी आशाएं क्या थीं? उनकी आशाओं से उनको क्या मिला है सिवाय निराशा के? उनकी आशाओं से उनके बाप-दादों को क्या मिला था सिवाय निराशा के?
उनकी सारी आशाएं निराशाओं में समाप्त होती हैं। उनकी आशाओं की सरिताएं हमेशा निराशाओं के मरुस्थल में खो जाती हैं। मगर फिर भी एक पागलपन है, एक अंधापन है। हर बाप, हर मां अपने बेटे को वही रोग दे जाते हैं, जिनमें वे सड़े, जिनमें वे गले, जिनमें वे मरे, जिनमें वे पचे, जिनमें उनकी जिंदगी बेकार गई। लेकिन फिर भी एक अहंकार है कि बच्चे हमारी सौगात को सम्हाल कर रखें।
इज्जत, जो कि कभी थी ही नहीं! किस इज्जत की बातें कर रहे हो? जिंदगी इतने गलत ढंग से जीए हो कि बेइज्जती के सिवाय तुम्हारी जिंदगी में और क्या है?
हां, यह हो सकता है कि भारत-रत्न की उपाधि मिली हो। यह हो सकता है कि गांव के मेयर चुने गए होओ। यह हो सकता है कि बड़े तुमने प्रमाण-पत्र जुटा लिए हों, सोने के तगमे मिले हों! मगर ये सब धोखे हैं। भीतर गड्ढे के गड्ढे हो, खाली के खाली हो। जैसे आए थे वैसे ही खाली विदा हो गए हो। ये सब कागज के प्रमाण-पत्र यहीं पड़े रह जाएंगे, इनका कोई मूल्य नहीं, दो कौड़ी भी मूल्य नहीं है।
लेकिन प्रेम शक्ति, उनको चोट तो लगेगी, उनकी आशाएं टूट गईं, उनकी परंपराएं टूट गईं। और परंपराओं में था क्या उनकी? किसने क्या पाया है

परंपराओं से? सिर्फ गुलामी के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। उनकी इज्जत, शोहरत, वह तो टूटेगी। वह तो मीरा भी नाची, प्रेम शक्ति, तो भी टूट गई थी। मीरा कहती हैः लोक-लाज खोई। मीरा के परिवार के लोगों ने जहर भेजा था कि यह तू पी ले और मर जा, क्योंकि तेरे कारण हमारी इज्जत, हमारी शोहरत पर धब्बा लगा जा रहा है।
और मजा यह है कि मीरा अगर उस घर में पैदा न होती तो उस घर का कोई नामलेवा भी न होता आज। कौन राणाजी को याद करता? ऐसे कई बुद्धू, कई राणाजी हो गए; करोड़ों हो चुके। किसको फिकर थी? यह मीरा के कारण उनका नाम रह गया है।
जरा सोचो तुम, बुद्ध अगर पैदा न होते तो बुद्ध के पिता शुद्धोधन का तुमने नाम भी सुना होता? ऐसे कई शुद्धोधन आए और गए, कौन फिकर करता है, कौन चिंता करता है! कोई बड़ा साम्राज्य भी न था शुद्धोधन का। एक तहसीलदार से ज्यादा हैसियत नहीं थी। अब कितने तहसीलदार हैं? एक छोटा सा गांव कपिलवस्तु, जिसमें अब कुछ खंडहर पड़े रह गए हैं, वही राजधानी थी। जरा सा विस्तार था। छोटी-मोटी जागीरदारी थी। ज्यादा बड़ी हो भी नहीं सकती थी। भारत की परंपरा खंडित होने की परंपरा है। बुद्ध के समय में भारत में दो हजार सम्राट थे। अब तुम सोच लो कि दो हजार सम्राट! भारत दो हजार राष्ट्रों में बंटा था। इनमें से किसका तुम्हें नाम याद है? एक शुद्धोधन को छोड़ कर बाकी एक हजार नौ सौ निन्यानबे सम्राटों का क्या हुआ?
मगर लोग पिटी-पिटाई लकीरों पर चलते हैं। जहां बार-बार गिरे हैं वहीं- वहीं गिरते हैं। नयी भूलें भी नहीं करते। भूलें भी पुरानी करते हैं। ऐसे दकियानूस हैं कि नयी भूल की ईजाद करने की भी क्षमता नहीं है।
तो प्रेम शक्ति, अड़चन तो आएगी। और उनसे तेरी भाषा का तालमेल भी टूट जाएगा। जिससे मेरी भाषा का तालमेल बैठा, उसका सारे लोगों की भाषा से तालमेल टूटा।
इसलिए मैं सहजानंद, उसको कहूंगा वृद्ध, उसको कहूंगा बुद्ध, जिसकी मौजूदगी में, जिससे आंख से आंख मिल जाए तो नशा छा जाए; जिसके हाथ में हाथ आ जाए तो जीवन में नयी पुलक आ जाए, जो कभी न थी पहले। हृदय एक नयी धड़कन ले ले, एक नया नृत्य ले ले। धर्म को जो समझाए नहीं, बताए नहीं, जीए; और जिसके पास धर्म जीवंत हो उठे। ऐसा मैं अर्थ करूंगा। अर्थ मेल खाता हो महाभारत से, न खाता हो। मुझे किसी महाभारत से क्या लेना-देना? मैं किन्हीं शास्त्रों के समर्थन के लिए यहां नहीं हूं! हां, अगर कोई शास्त्र मेरे समर्थन में हो, यह उस शास्त्र का सौभाग्य है।
नासो धर्मो यत्र न सत्यमस्ति।
"जिसमें सत्य नहीं है वह धर्म नहीं है।"
अब यह भी कोई बात है? सत्य और धर्म पर्यायवाची हैं। अब जिसमें सत्य नहीं है वह धर्म नहीं है--इसको कहने की कोई जरूरत है? जो बोतल खाली है उसमें शराब नहीं है, यह भी कहना पड़ेगा? यह तो अंधा भी टटोलेगा तो पहचान लेगा कि बोतल खाली है; शराब तो दूर, इसमें पानी भी नहीं है। सत्य ही तो धर्म है!
लेकिन महाभारत यह समझाने की कोशिश कर रहा है कि सत्य शास्त्रों में
है और जो शास्त्रों में है वही धर्म है! वृद्ध शास्त्र दोहराते हैं, इसलिए वे जो कहते हैं वह सत्य है।
फिर तो बहुत सत्य हो जाएंगे, क्योंकि जैन वृद्ध कुछ और कहते हैं, बौद्ध वृद्ध कुछ और कहते हैं, हिंदू वृद्ध कुछ और कहते हैं, मुसलमान वृद्ध कुछ और कहते हैं, ईसाई वृद्ध और कुछ कहते हैं। फिर तो बहुत धर्म हो जाएंगे। फिर तो बहुत सत्य हो जाएंगे। और सत्य एक है और धर्म भी एक है। धर्म और सत्य पर्यायवाची हैं।
धर्म का अर्थ ही हैः जीवन का मूल आधार; जीवन जिससे धारण किया गया है। धर्म शब्द का भी यह अर्थ होता हैः जिस पर जीवन टिका है; जो जीवन की आधारशिला है; जिसने जीवन को धारण किया है; जिसके बिना जीवन नहीं है। वही तो सत्य है। वह दूसरा शब्द है, कहने भर का भेद है। सत्य और धर्म को दो समझना उपद्रव का कारण सिद्ध हुआ है। सत्य और धर्म एक हैं।

लेकिन तब अड़चन यह आती है कि जब भी कोई सत्य की उदघोषणा करेगा, तब पुराने शास्त्रों के विपरीत पड़ जाएगी। क्योंकि पुराने शास्त्र पिट गए, उनके शब्दों पर पंडितों ने इतने ज्यादा रंग मढ़ दिए, इतनी ज्यादा पर्तें चढ़ा दीं कि उनका मूल रूप कभी का खो चुका। जब भी कोई सत्य की उदघोषणा करेगा, तब तुम्हारे तथाकथित धर्म और धर्म-शास्त्र उसके विपरीत खड़े हो जाएंगे। उस भेद को बताने के लिए यह भेद महाभारत कर रहा हैः "जिसमें सत्य नहीं
है वह धर्म नहीं है।"
मैं तुमसे कहना चाहता हूंः सत्य ही धर्म है। लेकिन सत्य शास्त्रों में नहीं है और न धर्म शास्त्रों में है। सत्य होता है ध्यानस्थ, समाधिस्थ व्यक्ति की चेतना में। और जिसने समाधि को पा लिया, उसी ने धर्म को पाया है। मगर यह हमेशा बगावत है, हमेशा विद्रोह है। यह हमेशा सड़ी-गली लाशों के बीच में जीवंत का अवतरण है। यह अंधेरी रात में, अमावस की रात में अचानक सूरज का ऊगना है।
"जिसमें छल मिला हुआ है वह सत्य नहीं है।"
क्या बकवास और फिजूल की बातें! इसको कहने की जरूरत है कि जिसमें छल मिला है वह सत्य नहीं है? मगर ये तरकीबें हैं। ये तरकीबें हैं यह बताने की कि हमारा सत्य ही सत्य है, औरों के सत्य में छल मिला हुआ है। यह दुकानदारी की भाषा है, यह व्यावसायिक भाषा है--कि असली घी यहीं बिकता है, बाकी सब घी नकली है।
जैन शास्त्र कहते हैं कि जैन शास्त्र ही सदशास्त्र हैं और बाकी सब शास्त्र असद; जैन गुरु ही सदगुरु हैं, बाकी सब गुरु कुगुरु; जैन धर्म ही सत्य धर्म है, बाकी सब धर्म कुधर्म हैं। और कुधर्म से बचना, क्योंकि उसमें छल है। जहां छल है वहां सत्य नहीं।
यही महाभारत भी कोशिश कर रहा है कि जिसमें छल मिला हो वहां सत्य नहीं है। हालांकि महाभारत पूरा का पूरा छल से भरा हुआ है। छल ही छल है। द्रोणाचार्य की इतनी प्रशंसा है महाभारत में, उनको महागुरु कहा है और इससे ज्यादा छल वाला आदमी खोजना कठिन है। इसने एकलव्य को इनकार कर दिया शिक्षा देने से, क्योंकि एकलव्य शूद्र है।
सत्य भी इसकी फिकर करता है कि कौन ब्राह्मण है, कौन शूद्र है? और द्रोण अगर इतने बड़े गुरु थे तो इनके पास इतनी भी आंखें नहीं थीं कि एकलव्य की संभावना को पहचान सकते? एकलव्य कहीं ज्यादा प्रामाणिक व्यक्ति सिद्ध हुआ। उसने दूर जंगल में जाकर एक प्रतिमा बना ली द्रोण की। मान लिया जिसको गुरु मान लिया। गुरु ने इनकार भी कर दिया तो भी उसने अपनी धारणा को नहीं तोड़ा। गुरु के इनकार ने भी उसके समर्पण को नहीं मिटाया। यह समर्पण है! गुरु ने ठुकराया तो भी उसने गुरु को नहीं ठुकराया। एक दफे जो कर दिया समर्पण तो कर दिया।
तो जंगल में मूर्ति बना कर ही धनुर्विद्या का अभ्यास शुरू कर दिया।
और जल्दी ही खबरें आने लगीं कि उसकी धनुर्विद्या ऐसी प्रकीर्ण होती जा रही है कि द्रोणाचार्य जिन शिष्यों को तैयार कर रहे हैं--वे सब राजपुत्र थे--उन सबको मात कर देगा वह। अर्जुन पर बड़ी आशा थी, क्योंकि अर्जुन उनका श्रेष्ठतम धनुर्धर था। और जब यह भी खबर आई कि अर्जुन भी एकलव्य के सामने कुछ नहीं है, तो यह तथाकथित महान गुरु, यह महान ब्राह्मण, यह राजपुत्रों को धनुर्विद्या सिखाने वाला, महाभारत में जिसकी प्रशंसा ही प्रशंसा भरी है, यह दक्षिणा लेने पहुंच गया--उस शिष्य के पास, जिसको कभी इसने दीक्षा दी ही नहीं थी!
अब बेईमानी की भी कोई सीमा होती है! छल और पाखंड का भी कोई अंत है! जिसको दीक्षा नहीं दी उससे दक्षिणा लेने जाना, शर्म भी न आई!
मुझे एकलव्य मिल गया होता तो कहता, "थूक इस आदमी के मुंह पर! जी भर कर थूक! इसको पीकदानी समझ! यही इसकी दक्षिणा है। यह शूद्र है, तू ब्राह्मण है। इसकी छाया भी पड़ जाए तो स्नान कर!"
मगर एकलव्य की भी प्रशंसा करता है महाभारत। प्रशंसा का कारण यह है कि उसने दक्षिणा देने की तैयारी दिखलाई। और दक्षिणा में क्या मांगा द्रोणाचार्य ने? उसके दाएं हाथ का अंगूठा मांग लिया! और क्या छल होगा? यह

अंगूठा इसलिए मांग लिया कि न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। यह अंगूठा कट गया तो धनुर्विद्या खतम। फिर यह अर्जुन का प्रतियोगी न रह जाएगा। यह राजपुत्र को बचाने के लिए गरीब के बेटे की हत्या। जिससे धन मिल रहा है उसको बचाने के लिए, उसकी हत्या जिसके पास कुछ भी नहीं है और जिसने अपना सब देने की तैयारी दिखलाई। उसने तत्क्षण, देर की न अबेर की, सोच किया न विचार किया और अंगूठा काट कर दे दिया।
यह द्रोणाचार्य की प्रशंसा इसलिए कि उन्होंने शूद्र को इनकार किया।
और एकलव्य की प्रशंसा इसलिए कि उसने इस पाखंडी और छली आदमी को अपना अंगूठा काट कर दे दिया। उपदेश यह है कि गुरु सदा ऐसा करेंगे और शिष्यों को सदा ऐसा करना चाहिए। ऐसे गुरुओं को भी अंगूठे काट कर दे देना चाहिए, गर्दन मांगें तो गर्दन दे देनी चाहिए, जो तुम्हें जूते से ठुकराने योग्य भी नहीं मानते। जूते से भी ठुकराएंगे तो उनका जूता भी गंदा हो जाएगा।
और फिर वक्त पर यही द्रोणाचार्य अर्जुन को भी धोखा दे गया। यह आदमी ही धोखेबाज था। यह खड़ा हुआ कौरवों के साथ, क्योंकि इसको दिखाई पड़ा कि पांडवों के जीतने की कोई संभावना नहीं। अरे जहां जीत, वहां समझदार आदमी होता है! तब यह भूल गया अर्जुन को भी। तब यह भूल गया पांडवों को भी। इनकी संभावना जीत की नहीं थी। ये तो दर-दर के भिखारी हो गए थे। इसकी प्रशंसा की गई है।
और भीष्म की प्रशंसा की गई है। भीष्म, जब कौरव और पांडव दोनों जुआ खेल रहे थे, भलीभांति परिचित थे कि शकुनी ने, कौरवों के मामा ने, झूठे पांसे बनाए हैं--चालबाजी से भरे हुए पांसे हैं। उनको किसी भी तरह फेंको, जीत निश्चित है। फिर भी चुप रहे। छल किसको कहते हैं और? सब हार गए पांडव। द्रौपदी को दांव पर लगाया, तब भी चुप रहे। तब भी इतना मुंह न खुल सका इस महा ज्ञानी का, महा वृद्ध का! यह परम ब्रह्मचारी का तब भी मुंह न खुला कि यह क्या अन्याय हो रहा है! और सारा शड्यंत्र पता है कि अब यह द्रौपदी भी जाएगी, क्योंकि वे पांसे तैयार किए हुए पांसे हैं। और द्रौपदी भी गई। और जब दुर्योधन उसके वस्त्र उतार कर नग्न करने लगा, तब भी भीष्म चुप रहे।
ये कमजोर, ये नपुंसक, इनकी प्रशंसाएं! ये कायर, इनकी इतनी प्रशंसा कि अंत में खुद कृष्ण अर्जुन को कहते हैं और युधिष्ठिर को कहते हैं कि मरते हुए भीष्म से ज्ञान ले लो, धर्म का थोड़ा संदेश ले लो, इनसे कुछ उपदेश ग्रहण कर लो। जैसे कि कोई ये बुद्ध हों! इनसे क्या उपदेश लेना है? और यह आदमी फिर भी कौरवों की तरफ से लड़ा।
ये जालसाजी से भरी हुई किताबें, ये शड्यंत्रों से भरे हुए शास्त्र, इनमें सत्य खोजने कहां जाते हो? इनसे बचो, सहजानंद। इसमें अगर कुछ बचाने योग्य सूत्र में है तो इतना कि वृद्ध का अर्थ प्रौढ़ करना, बुद्ध करना। और धर्म को बतलाने का अर्थ धर्म को जीना करना, क्योंकि वही उसके बतलाने का अर्थ है। धर्म और सत्य एक हैं, ऐसा जानना। और स्वभावतः, यह कुछ कहने की बात ही नहीं कि जहां छल है वहां सत्य नहीं है।
तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे रहो
वक्त कुछ मेरे मरने का टल जाएगा।
क्या ये कम है मसीहा के होने ही से
मौत का भी इरादा बदल जाएगा।
तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे रहो
वक्त कुछ मेरे मरने का टल जाएगा।
तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे रहोवक्त कुछ मेरे मरने का टल जाएगा। क्या
ये कम है मसीहा के होने ही सेमौत का भी इरादा बदल जाएगा। तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे रहोवक्त कुछ मेरे मरने का टल जाएगा।
मसीहा की मौजूदगी काफी है। न तो कहने की कुछ बात है, न बतलाने की कोई बात है। जो बताने में और कहने में आ जाता है, वह बात कुछ बड़ी बात नहीं। जो बताने और कहने के पार छूट जाता है, वही बड़ी बात है। लेकिन वह मसीहा की मौजूदगी, वह किसी सदगुरु की मौजूदगी में ही हो सकता है।
शास्त्र तो मरे हुए हैं, मुर्दा हैं, कागज हैं, कागज पर फैली स्याही है। अर्थ तुम जो बिठाना चाहो, बिठा लेना। अर्थ तुम्हारे हैं। शास्त्र तुम्हारे हाथ में हैं, तुम्हारे गुलाम हैं। जैसी व्याख्या चाहो, कर लेना।

लेकिन सदगुरु जब जिंदा होता है तब तुम्हारा गुलाम नहीं होता। तब तुम उसके शब्दों को बिगाड़ नहीं सकते। तब उसके साथ होना खड्ग की धार पर चलने जैसा है।
तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे रहो
वक्त कुछ मेरे मरने का टल जाएगा।
क्या ये कम है मसीहा के होने ही से
मौत का भी इरादा बदल जाएगा।
रुख से पर्दा उठा दे जरा साकिया
बस अभी रंगे-महफिल बदल जाएगा।
जो कि बेहोश हैं आएंगे होश में
गिरने वाला जो है वो सम्हल जाएगा।
साकी सूफी प्रतीक है सदगुरु का--जिसके पास दिव्य आनंद की शराब लुटाई जाती है; जो भरता ही जाता है अपनी सुराही से तुम्हारे मदिरा-पात्र को। रुख से पर्दा उठा दे जरा साकियाबस अभी रंगे-महफिल बदल जाएगा।
और जब जरूरत होती है, जब भी देखता है कि कोई शिष्य तैयार है, तो रुख से पर्दा उठाता है। लेकिन यह तैयारी के क्षण में ही हो सकता है। क्योंकि जब साकी रुख से पर्दा उठाएगा तो तुम सिवाय शून्य के और कुछ भी न पाओगे। और शून्य को झेलने की सामर्थ्य होनी चाहिए। अन्यथा घबड़ा जाओगे, भयभीत हो जाओगे, भाग खड़े होओगे।
रुख से पर्दा उठा दे जरा साकियाबस अभी रंगे-महफिल बदल जाएगा। जो कि बेहोश हैं आएंगे होश मेंगिरने वाला जो है वो सम्हल जाएगा। मेरी फरियाद से वो तड़प जाएंगेमेरे दिल को मलाल तो होगा मगर। क्या ये कम है कि वो बेनकाब आएंगेमरने वाले का अरमां निकल जाएगा। अपने पर्दे का रखना है गर कुछ भरमसामने आना-जाना मुनासिब नहीं। एक वहशी से ये छेड़ अच्छी नहींक्या करोगे अगर ये मचल जाएगा। फूल कुछ इस तरह तोड़ ऐ बागवांशाख हिलने न पाए न आवाज हो। वरना गुलशन में फिर न बहार आएगीदिल अगर हर कली का दहल जाएगा।
इसलिए सदगुरु को बहुत सम्हल-सम्हल कर कदम लेने पड़ते हैं शिष्य के साथ।
फूल कुछ इस तरह से तोड़ ऐ बागवांशाख
हिलने न पाए न आवाज हो।
वरना गुलशन में फिर न बहार आएगी।
दिल हर कली का दहल जाएगा।
तीर को यूं न खींचो कहा मान लो
तीर पैवस्त दिल में है सच जान लो।
तीर निकला तो दिल साथ में आएगा
दिल जो निकला तो दम भी निकल जाएगा।
तुम तसल्ली न दो सिर्फ बैठे रहो
वक्त कुछ मेरे मरने का टल जाएगा।
क्या ये कम है मसीहा के होने ही से
मौत का भी इरादा बदल जाएगा।
सदगुरु वृद्ध है, उसकी उम्र कुछ भी हो। और सदगुरु वह है जिसने शून्य
को पहचाना है। यद्यपि अपना पर्दा वह केवल उसी के लिए उठा सकता है, जो शून्य को झेलने में समर्थ हो। वह उसी कली के सामने अपने को पूरा-पूरा प्रकट कर सकता है, जो कली टूटने को, फूटने को, फूल बनने को राजी हो। फूल बनने के पहले कली को कली की तरह तो मिटना ही होगा।
इसलिए सदगुरु मौत भी है और एक नये जीवन का प्रारंभ भी। वह सूली भी है
और सिंहासन भी।
वीणा भारती ने पूछा है इस गीत में--वही जो मैं कह रहा था सहजानंद को।
पूछा हैः
उजाड़ दे मेरे दिल की दुनिया
सुकून को मेरे तबाह कर दे,
मगर मेरी इल्तिजा है तुझ
सेइधर भी अपनी निगाह कर दे।

सुहानी रातों की चांदनी में
कभी न तुम बेनकाब आना,
मैं दिल पे काबू तो कर सकूंगा
निगाह शायद गुनाह कर दे।
मगर मेरी इल्तिजा है तुझ
सेइधर भी अपनी निगाह कर दे।
ये पर्दादारी है या तमाशामुझी में रह कर मुझी से पर्दा!
तबाह करना है अगर मुझको
नकाब उठा और तबाह कर दे!
मगर मेरी इल्तिजा है तुझसे
इधर भी अपनी निगाह कर दे।
वीणा, कर रहा हूं निगाह। और तू किस भूल में पड़ी है? तू किस भ्रम में पड़ी है? तू पूछती हैः "उजाड़ दे मेरे दिल की दुनिया।"
उजाड़ ही चुका हूं। जरा मेरी तरफ देख--यह देखा उसने! और सुकून अब बचा कहां, वह तो कभी का तबाह कर चुका हूं।
उजाड़ दे मेरे दिल की दुनिया
सुकून को मेरे तबाह कर दे,
मगर मेरी इल्तिजा है तुझसे
इधर भी अपनी निगाह कर दे।
निगाह तेरी ही तरफ है।
निगाह उन सबकी तरफ है जो भी उजड़ने को तैयार हैं। निगाह बस उन्हीं की तरफ है!
सुहानी रातों की चांदनी मेंकभी न तुम बेनकाब आना।
अब तो बहुत देर हो गई।
मैं दिल पे काबू तो कर सकूंगा
निगाह शायद गुनाह कर दे।
गुनाह तो हो चुका।
मगर मेरी इल्तिजा है तुझसे
इधर भी अपनी निगाह कर दे।
ये पर्दादारी है या तमाशा
यह दोनों है। यह लुका-छिपी का खेल है। शिष्य और गुरु के बीच यह ख्याल समझ लेने जैसा है। यह भी एक लीला हैः छिपना, प्रकट होना, फिर-फिर छिप जाना, फिर प्रकट होना। यह जरूरी है। यूं ही धीरे-धीरे शिष्य पकता है। ये दिन और रात दोनों आवश्यक हैं। रात सब पर्दा पड़ जाता है, दिन सब पर्दा उठ जाता है। यह जरूरी है कि थोड़ी देर के लिए आंखों पर पर्दा पड़ जाए। क्योंकि जब आंखों पर पर्दा पड़ जाता है तो जितना काम तब तक हुआ है वह परिपक्व हो लेता है, मजबूत हो लेता है। और जब वह मजबूत हो गया तब फिर पर्दा उठ जाता है; फिर नया अंकुर, फिर नया बीज टूटता, फिर नयी शाखाएं, नये पल्लव, नयी कलियां! लेकिन फिर जरूरी है कि पर्दा पड़ जाए। क्योंकि जो भी बढ़ती होती है जीवन में उसके लिए दोनों जरूरी हैं--अंधेरा भी और सूरज भी।
इसीलिए जड़ें अंधेरे की तरफ जाती हैं, जमीन की गहराई में जाती हैं। वे पर्दों के बिना, अंधेरे के बिना बढ़ नहीं सकतीं। और वृक्ष की शाखाएं आकाश की तरफ उठती हैं--सूरज की तरफ, चांद-तारों की तरफ। रोशनी के बिना उनकी कोई गति नहीं। रोशनी ही उनका जीवन है। मगर वे जो फूल खिलेंगे ऊंची से ऊंची शाखा पर, उनका रस भी आता है गहरे से गहरे अंधेरे से। जीवन के इस विरोधाभास को समझना जरूरी है।
ये पर्दादारी है या तमाशा
"या" का सवाल नहीं, वीणा। यह दोनों है। सदगुरु को दोनों काम करने पड़ते हैं। उसे कुछ अंधेरा भी कि तुम्हारी जड़ें मजबूत हों; कुछ रोशनी भी कि तुम्हारे फूल भी खिलें। इसलिए सदगुरु का काम इस दुनिया में बहुत विरोधाभासी काम है।
कबीर ने कहा हैः सदगुरु यूं है जैसे कुम्हार। कुम्हार जब चाक पर अपने बर्तन को चढ़ाता है तो भीतर से एक हाथ से सहारा देता है और बाहर से दूसरे

हाथ से चोटें करता है, थपकी मारता है। तभी आहिस्ता-आहिस्ता... । भीतर का सहारा और बाहर की चोट--ये विरोधाभासी बातें हैं। एक तरफ चोट, एक तरफ सहारा। इधर मारता है, इधर पुचकारता है। और यूं आहिस्ता-आहिस्ता एक सुंदर सुराही निर्मित हो जाती है--सुराही, जो शराब से भर सकती है! यूं इतने प्रेम से चोट भी करता है, उतने ही प्रेम से सम्हालता भी है, उतने ही प्रेम से अग्नि में भी डालता है, क्योंकि बिना अग्नि के परिपक्वता नहीं होगी।
तू ठीक पूछती है, प्रत्येक शिष्य को पूछने जैसा सवाल है--
ये पर्दादारी है या तमाशामुझी में रह कर मुझी से पर्दा! तबाह करना है अगर मुझकोनकाब उठा और तबाह कर दे!
तबाह तो करना है, तबाह करना शुरू भी कर दिया। मगर तबाह करने का भी एक सलीका होता है। आहिस्ता-आहिस्ता करना होता है। हौले-हौले करना होता है। एकदम से कर दो, मजा नहीं। क्यों? क्योंकि इधर तबाह भी करना है, उधर निर्माण भी करना है। अगर सिर्फ तबाह ही करना हो, तो एक क्षण की बात है। लेकिन अगर निर्माण भी करना हो, सृजन भी करना हो तो दोहरे काम हैं। तो थोड़ा तबाह, फिर थोड़ा सृजन, ताकि जो टूटता जाए वह बनता भी जाए; इधर टूटता जाए, उधर बनता जाए। ऐसे आहिस्ता-आहिस्ता एक दिन सब पुराना विदा हो जाता है और नये का आगमन हो जाता है।

दूसरा प्रश्नः परशुराम ने फरसा चला कर क्षत्रियों को मिटा डाला और तब खत्री पैदा हुए। इधर आपका फरसा और तेज छुरियां तो मुझ पर ऐसी चल रही हैं कि मैं मिटा जा रहा हूं, मरा जा रहा हूं, मैं डूबा जा रहा हूं और तिनके का सहारा भी नहीं। आपने बच कर भाग निकलने का उपाय भी छोड़ा नहीं। आपसे बच कर भाग निकलने का उपाय कुछ समझ में भी नहीं आता और न ही अभी मेरा कोई मरने- डूबने का इरादा और तैयारी ही है। अब तो आप ही उबारें। अब क्या होना है? आपके इरादे क्या हैं? आप चाहते क्या हो?
दीन दयाल खत्री! उन्होंने "पुनश्च" करके भी लिखा है--
पुनश्चः कुछ दिन से यहीं हूं, जाने का मेरा मन नहीं। बस फिदा हूं आप पर। मजा आ रहा है। बेचैनी भी बहुत है।

परशुराम ने क्षत्रिय मिटा डाले, यह बड़े दुर्भाग्य की बात थी। इस देश
के जीवन में इससे बड़ा दुर्भाग्य और कोई घटा नहीं। क्योंकि जिस देश में क्षत्रिय मर जाएं, उस देश की छाती ही समाप्त हो जाती है। जिस देश में क्षत्रिय मर जाएं, उस देश में बचता ही क्या है?
क्षत्रिय से मेरा संबंध कोई क्षत्रिय वर्ण से नहीं है। क्षत्रिय से मेरा संबंध है दुस्साहसियों से।
अब तुम पूछते होः "परशुराम ने फरसा चला कर क्षत्रियों को मिटा डाला और
तब खत्री पैदा हुए। इधर आपका फरसा और तेज छुरियां तो मुझ पर ऐसी चल रही हैं कि मैं मिटा जा रहा हूं... ।"
मुझे खत्रियों को मिटाना है, ताकि क्षत्रिय फिर पैदा हो सकें। और तो कोई उपाय नहीं। परशुराम जो गड़बड़ घोटाला कर गए हैं उसको पुनर्व्यवस्था देनी है। एक-एक खत्री को मिटाना है। खत्री भी कोई बात हुई! दीन दयाल, यहां से तो क्षत्रिय ही होकर जा सकोगे। और क्षत्रियों का रंग तो तुम देख ही रहे हो, ढंग भी देख ही रहे हो।
मगर खत्री है डरपोक। तुम्हारे दिल को तो बात रुच रही, पच रही। मगर खत्री बीच-बीच में कह रहा है कि अभी अपना मरने का इरादा और तैयारी नहीं है। अब तुम्हारे इरादे और तैयारी से कहीं कुछ मरना होगा? तुम्हारे इरादे
पर बात छोड़ दी मैंने तो तुम कभी न मरोगे, तुम खत्री ही रहोगे। अब बात तुम्हारे हाथ से सरकती जा रही है।
अब तुम कहते होः "आपसे बच कर भाग निकलने का उपाय भी नहीं। मैं मिटा जा रहा हूं, मरा जा रहा हूं, डूबा जा रहा हूं और तिनके का सहारा भी नहीं।"
मैं तिनके का सहारा भी नहीं देता। तिनकों के सहारे तो लोग पकड़े बैठे हुए हैं। तिनकों के सहारों से कुछ सहारा है? मैं तुम्हें नाव देना चाहता हूं। नाव भी कोई नकली नहीं। कोई कागज की नहीं, कोई शास्त्र की नहीं। मैं

तुम्हें नाव देना चाहता हूं जो तुम्हें पार ले चले। बहुतेरे हैं घाट! मैं तुम्हें घाट देना चाहता हूं, नाव देना चाहता हूं।
खत्री होने से तो बचना पड़ेगा। खत्री तो डरपोक रहेगा, खत्री तो क्षत्रिय की लाश समझो। खत्री की खोल गिर जाए तो क्षत्रिय अभी प्रकट हो सकता है।
मेरा कुल काम यहां यही है कि समाज ने जो किया है तुम्हारे साथ, उसको अनकिया कर दूं। जो-जो वस्त्र तुम्हें उढ़ा दिए हैं, जो-जो नकल तुम पर चढ़ा दी है, उसको तुमसे छीन लूं। मरने जैसा ही लगेगा, लेकिन यही मृत्यु महाजीवन का प्रारंभ बनती है।
अब तुम कहते होः "अब तो आप ही उबारें!"
अगर मुझ पर छोड़ते हो तो पहले तो डुबाऊंगा, क्योंकि पहले तो खत्री को डुबाना पड़ेगा। जब देखूंगा खत्री बिल्कुल डूब गए, अब क्षत्रिय ही बचा, तब क्षत्रिय को बाहर निकालूंगा। इसकी तैयारी लगता है हो रही है, क्योंकि तुम कहते होः "कुछ दिन से यही हूं, जाने का मेरा मन नहीं। बस फिदा हूं आप पर।" सो तीर तो लग गया। और तीर कभी मैं पूरा नहीं मारता; बस छिदा रह जाता है। निकाल सकते नहीं उसे, क्योंकि उसका दर्द बड़ा मीठा। और अंततः एक न एक दिन प्रार्थना करनी पड़ती है कि अब पूरा ही मार डालें, यह तीर को पूरा ही गुजर जाने दें!
यह जो थोड़ा सा अटका हुआ तीर है, यह दर्द भी दे रहा है, मीठा दर्द भी दे रहा है। धीरे-धीरे मिठास रास आने लगेगी और तब हिम्मत बढ़ेगी। और तब यह तीर को जब तुम्हीं प्रार्थना करोगे कि अब पूरा उतर जाने दें, तभी यह तीर पूरा उतरेगा। और वही बचने का उपाय है। वही उबरने का उपाय है।
और पूछते होः "अब क्या होना है?"
अब यही होना है--तीर को पार होना है।
पूछते होः "आपके इरादे क्या हैं?"
नेक नहीं हैं। मैं कोई अच्छी नीयत का आदमी नहीं। एक से एक खतरनाक इरादे हैं।
आसमां से उतारा गयाजिंदगी दे के मारा गया।
इश्क जिसने किया सोच लेवो तो बेमौत मारा गया। आसमां...
मेरी महफिल से वो क्या गए
साथ में दिल हमारा गया।
आ के रिंदों में शेखे-हरम
आज बेमौत मारा गया। आसमां...
मुझको साहिल का दे के फरेबमौत के घाट उतारा गया।
मौज से भी न जो मर सकाउसको नजरों से मारा गया।
आसमां से उतारा गयाजिंदगी दे के मारा गया
इश्क जिसने किया सोच लेवो तो बेमौत मारा गया।
आसमां से उतारा गयाजिंदगी दे के मारा गया। इश्क जिसने किया सोच लेवो
तो बेमौत मारा गया। आसमां...
मेरी महफिल से वो क्या गएसाथ में दिल हमारा गया। आ के रिंदों में शेखे-हरमआज बेमौत मारा गया। आसमां...
मुझको साहिल का दे के फरेबमौत के घाट उतारा गया। मौज से भी न जो मर सकाउसको नजरों से मारा गया। आसमां से उतारा गयाजिंदगी दे के मारा गयाइश्क जिसने किया सोच लेवो तो बेमौत मारा गया।
अब तुम प्रेम में पड़ गए, दीन दयाल खत्री। और प्रेम इस जगत में बड़ी से बड़ी मौत है--मगर असली मौत! क्योंकि उसी मौत से जीवन अंकुरित होता है। उसी मौत से जीवन कुंदन बनता है।
मरीजे-मुहब्बत उन्हीं का फसाना
सुनाता रहा दम निकलते-निकलते
मगर जिक्र शामे-अलम जब कि आया
चरागे शहर बुझ गया जलते-जलते मरीजे-मुहब्बत... ।
इरादा था तर्के-मुहब्बत का लेकिन
फरेबे-तबस्सुम में फिर आ गए हम

अभी खा के ठोकर संभलने न पाए
कि फिर खाई ठोकर संभलते-संभलते मरीजे मुहब्बत... । उन्हें खत में लिखा था दिल मुज्तरिब है
जवाब उनका आया मुहब्बत न करते
तुम्हें दिल लगाने को किसने कहा था
बहल जाएगा दिल बहलते-बहलते मरीजे-मुहब्बत... ।
मगर कोई वादा-खिलाफी की हद है
हिसाब अपने दिल में लगा के तो देखो
कयामत का दिन आ गया रफ्ता-रफ्ता
मुलाकात का दिन बदलते-बदलते
मरीजे-मुहब्बत उन्हीं का फसानासुनाता रहा दम निकलते-निकलते मरीजे-मुहब्बत उन्हीं का फसानासुनाता रहा दम निकलते-निकलतेमगर जिक्र शामे-अलम जब कि आयाचरागे शहर बुझ गया जलते-जलते मरीजे-मुहब्बत... । इरादा था तर्के-मुहब्बत का लेकिनफरेबे-तबस्सुम में फिर आ गए हमअभी खा
के ठोकर संभलने न पाएकि फिर खाई ठोकर संभलते-संभलते मरीजे मुहब्बत... । उन्हें खत में लिखा था दिल मुज्तरिब हैजवाब उनका आया मुहब्बत न करतेतुम्हें दिल लगाने को किसने कहा थाबहल जाएगा दिल बहलते-बहलते मरीजे- मुहब्बत... ।
मगर कोई वादा-खिलाफी की हद हैहिसाब अपने दिल में लगा के तो देखोकयामत
का दिन आ गया रफ्ता-रफ्तामुलाकात का दिन बदलते-बदलतेमरीजे-मुहब्बत उन्हीं का फसानासुनाता रहा दम निकलते-निकलते
अब मुझसे छुटकारा तो करीब-करीब, दीन दयाल, असंभव है। अब यह तुम्हारी मर्जी। मुलाकात का दिन चाहो तो टालते रहो कयामत के दिन तक। मेरी तरफ से तो निमंत्रण मैंने दे दिया। अब तुम्हारे ऊपर मामला है।
मगर कोई वादा-खिलाफी की हद है
हिसाब अपने दिल में लगा के तो देखो
कयामत का दिन आ गया रफ्ता-रफ्ता
मुलाकात का दिन बदलते-बदलते
मगर कोई वादा-खिलाफी की हद हैहिसाब अपने दिल में लगा के तो देखोकयामत
का दिन आ गया रफ्ता-रफ्तामुलाकात का दिन बदलते-बदलते
मुझसे कोई यह न कह सकेगा कि मैंने मुलाकात का दिन बदला। मैं तो अभी तैयार हूं, इसी क्षण तैयार हूं। मगर तुम्हीं भीतर दहले हो, डरे हो। मगर यह स्वाभाविक है। तुम यहां नये-नये हो। खत्री और फिर नये-नये! तो जाने का मन भी नहीं। जाओगे भी तो मैं पीछा करूंगा। खत्रियों को तो मैं छोड़ता ही नहीं। खत्री एक बार यहां आया कि खतरे में पड़ा।
अब तुम कहते होः "बस फिदा हूं आप पर। मजा आ रहा है। बेचैनी भी बहुत है।"
कुछ तो कीमत चुकानी पड़ती है मजे की। बेचैनी भी आएगी मजे के साथ-साथ।
बैठे हैं तेरे मयखाने में इक जाम तो भर लें।
कुछ जिक्रे-खुदा कर लें कुछ जिक्रे-शराब कर लें।।
आ रही हैं हर सिम्त से यही आवाजें।
गुलशन में खिले हैं फूल महकार तो भर लें।।
हर रोज लुटा करती है यहां प्रेम की दौलत।
सर को कटा और दीदारे-खुदा कर लें।।
बैठे हैं तेरे मयखाने में इक जाम तो भर लें।
कुछ जिक्रे-खुदा कर लें कुछ जिक्रे-शराब कर लें।।
बैठे हैं तेरे मयखाने में इक जाम तो भर लें। कुछ जिक्रे-खुदा कर लें कुछ जिक्रे-शराब कर लें।। आ रही हैं हर सिम्त से यही आवाजें। गुलशन में खिले हैं फूल महकार तो भर लें।। हर रोज लुटा करती है यहां प्रेम की दौलत। सर को कटा और दीदारे-खुदा कर लें।। बैठे हैं तेरे मयखाने में इक जाम तो भर लें। कुछ जिक्रे-खुदा कर लें कुछ जिक्रे-शराब कर लें।।
इतनी तैयारी दिखाओ अब। अब यह गर्दन जो अब तक बचाए फिरे हो, यह सिर जो
अब तक सम्हाले रहे हो, जो बोझिल होता गया है, भारी होता गया है, इसको कटाने

की तैयारी कर लो। यह मस्तिष्क और मस्तिष्क में मची विचारों की भीड़ बेचैन ही रखेगी। यह सिर कट जाए तो सारी ऊर्जा हृदय को मिल जाए। और हृदय मंदिर है।
और हृदय के मंदिर में जो विराजमान है वही परमात्मा है।
आज इतना ही।